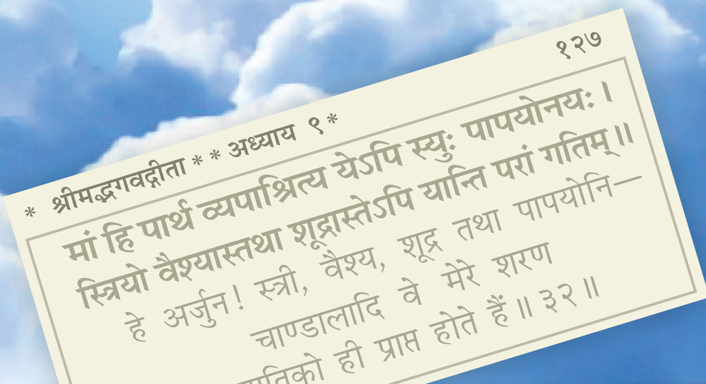
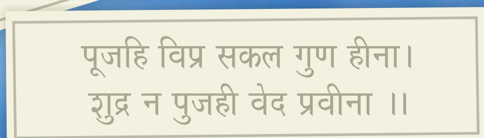
बुद्धिजीवियों का षडयंत्र

ऐतिहासिक अवलोकन


* श्रीमद्भगवद्गीता * * अध्याय ९ * १२७

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥

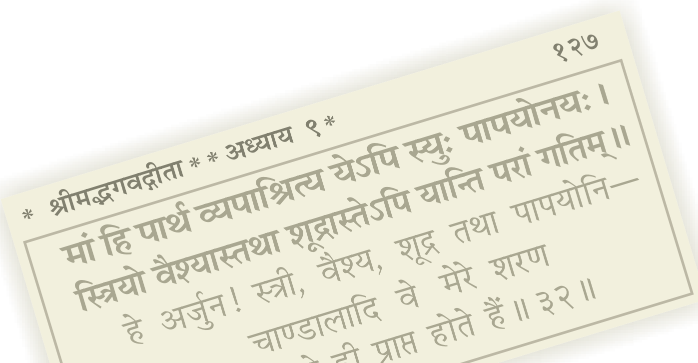
हे अर्जुन! स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि—चाण्डालादि वे मेरे शरण होकर परमगतिको ही प्राप्त होते हैं॥ ३२॥


पूजहि विप्र सकल गुण हीना।
शुद्र न पुजही वेद प्रवीना ।।

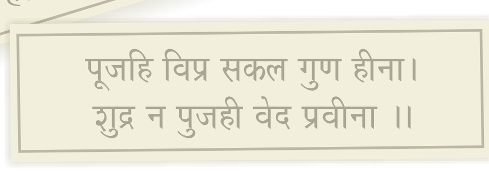
लेखक : राजीव पटेल

बुद्धिजीवियों का षडयंत्र

ऐतिहासिक अवलोकन



१२७
* श्रीमद्भगवद्गीता * * अध्याय ९ *
मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥
हे अर्जुन! स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि—
चाण्डालादि वे मेरे शरण
होकर परमगतिको ही प्राप्त होते हैं॥ ३२॥



पूजहि विप्र सकल गुण हीना।
शुद्र न पुजही वेद प्रवीना ।।

लेखक : राजीव पटेल

लेखक : **राजीव पटेल** (पटना) बिहार
सम्पर्क सूत्र : 9431073182
संजय कुमार सिंह (पटना) बिहार

प्रकाशन वर्ष : **2017**

मुद्रक : सुर्या इन्टरप्राइजेज, पटना
सम्पर्क : 9304427693

डिजाइन : ग्राफिक्स इंडिया, पटना
सम्पर्क : 9608241408

मूल्य : तर्कपूण एवं उपयोगितापरक विचारों का चिन्तन–मनन एवं प्रचार–प्रसार।

लेखक की कलम से....✍

भारत में प्राप्त पुरातात्विक अवशेषों के प्रमाण (अभिलेख, शिला–पट्ट, किला, धार्मिक स्थल, सभ्यता – संस्कृती), हर प्रदेश के सामाजिक लोगों को देखने से एवं अपने जीवन में लगातार अवलोकन करने से, मुझे सत्य की झलक का धीरे–धीरे बोध होने लगा। समाज के वास्तविक सत्य को अगर आप स्वयं भी सही अर्थों में अवलोकन एवं विवेचना करेंगे तो निश्चित रुप से आप भी सत्य के समीप पहुँच जाएंगे। समस्त तथ्यों के विश्लेषण करने के पश्चात्, मेरे भीतर एक संवेदना आने लगी कि मुझे भी इन सब बातों को लिखना चाहिए और मैं एक–एक कर इन सारी बातों को शब्दों में पिरोता चला गया, परिणामस्वरूप मेरे उपरोक्त विचार पुस्तक के रूप में अब आपके सामने है।

इसके बावजूद फिलहाल मैं अपना प्रयास अधूरा ही मानूँगा। वास्तव में मेरा प्रयास तभी सफल माना जायेगा, जब प्रत्येक इंसान इन सब बातों का स्वयं अनुभव करेंगे।

–राजीव पटेल

पाठकों से....✍

मेरा आपसे विनम्र आग्रह है कि इसे किसी दुराग्रह से प्रेरित होकर नहीं देखें। समाज का जो सच है और जिसे मध्यकालीन समय में जब भारतीय सत्ता मुगलों और अंग्रेजों के अधीन थी, उस समय कैसे–कैसे षड़यंत्र के तहत भारतीय सामाजिक व्यवस्था को मटियामेट कर दिया गया। मैंने उस समय की व्यवस्था को नष्ट–भ्रष्ट करने वालों के ऊपर लिखने का प्रयास किया है। इसमें किसी की व्यक्तिगत दिल दुखाने की चेष्टा मेरी नहीं है, फिर भी अगर किसी की आत्मा इस किताब से दुखित होती है तो मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

इसे जल्दीबाजी में ना पढ़ें, धैर्य रखें, पढ़ते समय शांतचित रहें, थोड़ा पढ़ें और उस पर ज्यादा विचार करें। जैसे–जैसे आप पढ़ते जायेंगे, आपके सामने उस समय में समाज के बुद्धिजीवियों की घोर साजिष आपके सामने आती जायेगी। आप उस पर गौर करना शुरू करेंगे। क्या पहले ऐसा हुआ था? अगर ऐसा मेरे साथ हुआ होता तब?

बुद्धिजीवियों का ऐतिहासिक षडयंत्र

भारतीय समाज की जातिगत व्याख्या किसी लेखक या पंडित की बुद्धिमता से ज्यादा समाज में व्याप्त अशिक्षा और गरीबी की वजह से स्वीकार्य है। इसे समाज पर जबरदस्ती लादा गया है और अज्ञानतावश लोग मान भी रहे हैं। यह जन्म–जन्मान्तर से व्याप्त नहीं है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक समाज, क्षेत्र या राज्य में एक जैसी व्यवस्था लागू भी नहीं है।

तब क्या ये मनु व्यवस्था या वर्ण व्यवस्था (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र) या सामाजिक व्यवस्था (दलित, पिछड़ा, सवर्ण) पंडित या लेखक के अनुसार सृष्टि के शुरू से लागू है अथवा पौराणिक (सनातनी या वैदिक) है?

आपकी सोच क्या है?
नहीं! हाँ। मालूम नहीं!

आइए इसका विश्लेषण करते हैं :–

पहली नजर तो हमलोग लेखक या पंडित पर डालेंगे। विभिन्न लेखक या पंडितगण भारत की जिस सामाजिक एवं जाति व्यवस्था का लगभग 1000 वर्षों से किताबों या शास्त्रों में वर्णन करते आ रहे हैं, क्या उन किताबों या शास्त्रों का कोई पुराना व प्रमाणिक ताड़ पत्र या पाण्डुलिपि उपलब्ध है?

उत्तर :– मालूम नहीं!!

सर्वप्रथम हमलोग उस ताड़ पत्र या पाण्डुलिपि से अनुवाद कर या अपनी परिकल्पना से लिखने वाले लेखक एवं पंडितगण पर नजर डालते हैं।

अभी तक एक हजार ईस्वी से पूर्व के किसी भी प्रकार के आधुनिक प्रकार के ग्रन्थ या किताब का पता भारतीय ज्ञान–विज्ञान को नहीं चला है। भारतीय पुरातत्व विभाग के पास उसके पहले का सिर्फ श्रुति–स्मृति, पाण्डुलिपि, ताम्रपत्र, ताड़पत्र अथवा अन्य प्रकार के शिलापट्ट मिलने का ही प्रमाण उपलब्ध है। यानी कि आज भारतीय सामाजिक परिवेश में पढ़ने को जो भी मिलता है, उसका लेखन या अनुवादन 1000 ईस्वी के बाद मुस्लिम

शासन काल या अंग्रेजों के समय का है। दूसरी बात मुख्य रूप से यह देखना है कि लेखक या अनुवादकों ने किसी भी विषय को लिखते या अनुवाद करते समय, क्या मुगलों या अंग्रेजों से प्रभावित होकर उनको खुश करने के लिए तो नहीं लिखा है? या फिर स्वयं स्वतंत्र और निर्विकार होकर लिखा या अनुवाद किया है? क्योंकि सारे–के–सारे लेखकों या अनुवादकों ने अपने समय के पदस्थापित सरकार से प्रभावित या प्रलोभित होकर, अपनी जिंदगी विलासिता पूर्वक जिया। भारत की आम जनता व समाज पूर्व में लिखित पाण्डुलिपि या ताम्रपत्र में लिखे हुए शब्दों को जानती तक नहीं है। भारत की आम जनमानस जानती है, तो सिर्फ इन लेखकों या अनुवादकों के द्वारा लिखे गए उन शब्दों को, जिसे उनके द्वारा कलमबद्ध कर भारतीय समाज के बीच किताबों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। आज समाज में जो भी विचार प्रवाहित हो रहा है, इन्हीं लेखकों या अनुवादकों की किताबों की देन है।

इन लेखकों की बातों का अहसास आपको साधारण रूप से सोंचने पर भी हो जायेगा। आज भी भारत के इतिहास को देखने और पढ़ने से आपको अभास होगा कि यहाँ के जितने भी लेखक या अनुवादक हुए हैं या वर्त्तमान में हैं, उन सबों के अंदर 1000 ईस्वी के पूर्व की जानकारी या लेखन में मतभिन्नता है। (750 ईस्वी में स्थापित पाल वंश, 606 ईस्वी में स्थापित हर्षवर्द्धन वंश, 240 ईस्वी में स्थापित गुप्त वंश, ईसा पूर्व में स्थापित शक वंश, ईसा पूर्व 185 में स्थापित सुंग वंश, ईसा पूर्व 321 में मौर्य वंश, ईसा पूर्व 345 में नंद वंश, ईसा पूर्व 413 में शिशुनाग वंश, ईसा पूर्व 544 में हर्यंक वंश) इन लेखकों को सही प्रकार से सच्ची और सटीक बृहद जानकारी उपरोक्त साम्राज्यों की भी नहीं हैं। इसके पूर्व के साम्राज्य पर तो भारत के लेखक या अनुवादक चुप हो जाते हैं। तब आप स्वयं ही समझ लीजिये कि जो लेखक या अनुवादक हजार–पाँच सौ साल के इतिहास में इधर–उधर बंगले झाँकने लगते हैं, तो फिर वो दावे के साथ लाखों साल पूर्व आदिम युग, राम युग और महाभारत युग के समय की सामाजिक बनावट की विवेचना को (वर्ण और जातियों) किताबों के माध्यम से बखान कैसे कर सकते हैं?

पंडित या लेखकगण अपने क्षुद्र लाभ को देखते हुए अपने आप को समाज के सामने एक ऐसे स्वार्थी मदारी (खेल–तमाशा दिखाने वाला) के समतुल्य प्रस्तुत करने का काम किया है, जो अपनी प्रतिभा का भरपूर उपयोग करते हुए, पहले आपकी इच्छानुसार अच्छा लगने वाला खेल तमाशा दिखाता है और जैसे–जैसे समूह बड़ी होती जाती है, तब वो अपनी स्वार्थ परक चतुराई का इस्तेमाल करते हुए उस भीड़ पर अपनी लाभप्रद बातें रखना शुरू कर देता है, जिससे भीड़ में उपस्थित ज्यादातर सीधे–साधे व्यक्ति उस मदारी की ठगी का शिकार हो जाते हैं।

उसी प्रकार से भारतीय संस्कृति में भी हर लेखक ने अपने स्वार्थ हित को सर्वोपरि मानकर सभी धार्मिक और सामाजिक इतिहास का अनुवाद अपनी परिकल्पना के अनुसार किया और लगभग 1000 ईस्वी के बाद से पुराने ताड़ पत्र, पाण्डुलिपि एवं श्रुति–स्मृति या काल्पनिक ग्रंथों का लेखन व अनुवाद का कार्य अपनी क्षुद्र प्रवृत्ति एवं अपनी नीच कल्पना के आधार पर किया और उन्हें मुद्रित कर नये–नये किताबों एवं ग्रंथों के द्वारा समाज में अपने विचार थोपने का काम करता रहा। वर्तमान के सभी धार्मिक और इतिहास के लेखकों ने धार्मिक और समाज सुधारक का चोला पहनकर एक सोची–समझी चालाकी का उपयोग करते हुए समाज रूपी भीड़ पर अपनी क्षुद्र प्रवृत्ति का परिचय देते हुए, उस धार्मिक – एतिहासिक ग्रंथों के माध्यम से खेल–तमाशा शुरू किये हुए हैं।

अब आपको देखना है कि उस भीड़ में अपने आप को भेड़ की तरह शामिल कर लें या अपने आपको भीड़ से अलग कर सही और गलत का आकलन तार्किक दृष्टिकोण से करें। उस भीड़ में दो प्रकार के लोग शामिल हैं।

(क) प्रथम प्रकार में वे हैं जो अपने–आप को उस लेखक (मदारी) की बातों में आकर अपने–आप को ठगी का शिकार समझ रहे हैं और फिर उसकी दवा खोजने किसी दूसरे लेखक (मदारी) के चंगुल में फँस कर रह जाते हैं और आगे चलकर अपने आप में काफी कुंठित हो जाते हैं।

(ख) दूसरे वे जो अपने आपको शुरू से ही उस भीड़ से अलग रखकर उस लेखक (मदारी) की बातों को देखा–अनदेखा कर अपनी जिंदगी स्वयं के तरीके से जीते हैं। लेकिन लेखक की बातों से कहीं–न–कहीं कुंठित जरूर रहते हैं।

मैं सही कह रहा हूँ, न!

इन लेखकों (मदारी) की भीड़ में भी दो तरह के इंसान हम सभी को साफ–साफ दिख रहा है। इन दोनों प्रकार पर चर्चा मैं आगे करूँगा। पहले आईये हमलोग मिलकर इस लेखक या पंडित की क्षुद्र चतुरता पर विचार करें।

लेखकों या पंडितों ने अपनी बातों को बहुत ही अच्छे तरीके से किताबों में कलमबद्ध कर समाज पर लादा है जिसके कुछ छंद मै आपके बीच में रख रहा हूँ। अब आप स्वयं ही सोचिये ....?

(1) ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी!

ये सब हैं ताड़ना के अधिकारी!!

(ताड़ना का अर्थ – पीटना या मारना)

सोच लिये! अब आप स्वयं से पूछिये कि इन नामों (ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी) के अंदर आप स्वयं अगर हैं या होते, तो उस लेखक या पंडित के ऊपर आपकी प्रतिक्रिया कैसी होती? समाज में नारी की पूजा होती है, उस नारी या समाज की प्रतिक्रिया उस लेखक या पंडित के प्रति कैसी होगी?

क्या, ऐसा हो सकता है?

(2) ब्रह्मा के मुख से पैदा लेने वाला ब्राह्मण!

ब्रह्मा के भुजा से पैदा लेने वाला क्षत्रिय!

ब्रह्मा के जंघा से पैदा लेने वाला वैश्य!

ब्रह्मा के पैर से पैदा लेने वाला शूद्र!

बिल्कुल वैसा ही प्रश्न फिर उठता है कि आप अगर इन शब्दों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) के अंदर स्वयं होते तो लेखक के प्रति आपकी कैसी प्रतिक्रिया होती? स्पष्ठ है कि बिल्कुल ही गलत जानकारी है ये। किसी ने कभी किसी को मुख, भुजा, जंघा, पैर से पैदा होते देखा है क्या? पहली बात है कि जो भी जन्म लेता है वो स्त्री से लेता है ना कि पुरूष से लेता है। ये सारे कपोल–कल्पित बातें हैं। हिन्दू धर्म में जितने भी देवी–देवता धार्मिक कथा के पात्र हुए हैं, उन सभी के माता–पिता हैं और सभी की जन्म प्रक्रिया माँ से है। प्राचीन कथाओं में अच्छे नीतिगत कर्म, सात्विक जीवन, परोपकारी कार्यों की वजह से उन सभी को भगवान की उपाधि मिली है। सारे–के–सारे जीव (इंसान, पशु–पक्षी) योनि मात्र से ही पैदा लेते हैं ना कि मुख, भुजा, जंघा, पैर से।

(3) काटेहिं पइ कदरी परइ कोटि जतन कोउ सींच।

बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहिं पइ नव नीच।।

चाहे कोई कितने ही उपाय कर ले पर केला तो काटने पर ही फलता है। नीच विनय से नहीं मानता, वह डाँटने पर ही रास्ते पर आता है। क्या केला से आम इंसान की तुलना करना उचित है? अगर उचित है, तब भी नीच या ऊँच, है तो इंसान ही। उसके प्रति ऐसी सोंच क्यों?

(4) अधम जाति में विद्यया पाए!
भयहुं यथा अहि दूध पिलाए!!

जिस प्रकार से साँप को दूध पिलाने से वह और विषैला (जहरीला) हो जाता है, वैसे ही शूद्रों (नीच जाति वालों) को शिक्षा देने से वे और खतरनाक हो जाते हैं। तुलसी की रामायण (रामचरितमानस) देखें : पेज 986, दोहा 99(3), उ0 का0। क्या साँप और इंसान एक ही हैं? साँप–साँप है, वो विषधर जंतू है और इंसान विवेकशील प्राणी है। फिर दोनों की तुलना कैसे? हाँ, यह हो सकता है कि सबों को शिक्षा मिल जाएगी तब तुम्हारा इंसान के भेष में छिपा हुआ विषधर साँप वाला चेहरा लोगों को दिख जायेगा।

(5) जे वर्णाधम तेली कुम्हारा!
स्वपच किरात कौल कलवारा!!

तेली, कुम्हार, सफाई कर्मचारी, आदिवासी, कौल, कलवार आदि अत्यंत नीच वर्ण के लोग हैं। तुलसी की रामायण (रामचरितमानस) देखें : पेज 1029, दोहा 129 छंद (1), उत्तर कांड। ये बातें स्वयं तुलसीदास की मुख से शोभा नहीं देती, क्योंकि इंसान अपनी जीविकोपार्जन हेतु कुछ भी नेक काम कर सकता है, इसमें छोटा–बड़ा कैसा? छोटा–बड़ा करना है तो उन लोगों को करो जो अपनी क्षुद्र जीविकोपार्जन हेतु मुगल शासकों के यहाँ अपनी बुद्धि–विवेक को गिरवी रखकर समाज का अहित किया था। जिसकी क्षति–पूर्त्ति आज तक नहीं हुई है।

(6) अभीर (अहीर) यवन किरात खल।
स्वपचादि अति अधरूप जे।।

अहीर (यादव), यवन (बाहर से आये हुए लोग जैसे ईसाई और मुसलमान आदि) आदिवासी, दुष्ट, सफाई कर्मचारी आदि अत्यंत पापी हैं, नीच हैं। तुलसीदास कृत रामायण (रामचरितमानस) देखें : पेज 338, दोहा 12(2) अयोध्या कांड।

(7) पूजहि विप्र सकल गुण हीना।
सुद्र न पुजही वेद प्रवीना ।।

विप्र यानि ब्राह्मण चाहे व्यभिचारी हो, भ्रष्टाचारी हो, जुआरी हो या शराबी हो उसकी पूजा ही होनी चाहिए.. और दलित–पिछड़े चाहे जितने भी विद्वान हों, चरित्रवान हों उनकी पूजा नहीं हो सकती ..। तुलसीदास कृत रामायण (रामचरितमानस)।

(8) चित्रकूट के घाट पर भय संतन की भीड़!
तुलसीदास चन्दन घिसे तिलक करे रघुवीर!!

(तुलसीदास का जन्म उत्तर प्रदेश के बाँदा जिले में राजापुर गाँव में हुआ था, जन्म का वर्ष 1497 या 1532 ईस्वी के आस–पास थी, क्योंकि भारतीय

इतिहासकारों के अंदर पक्के तौर से किसी एक समय पर सहमति नहीं बनती है और तुलसीदास की मृत्यु 1623 ईस्वी में अस्सी घाट, वाराणसी, उत्तर प्रदेश में हुई थी।)

क्या तुलसीदास के समय यानि पन्द्रहवीं–सोलहवीं शताब्दी यानि मुगल शासक "बाबर' के समय में प्रभु रामचन्द्र जी तुलसीदास से चन्दन का तिलक लगाने चित्रकूट आया करते थे? इस विषय पर आज के कुछ ब्राह्मणवादियों का कहना है कि तुलसीदास को रात के समय सपना में भगवान रामचन्द्र तिलक लगवाने आते थे। भाई, लोगों को मूर्ख बनाने की अति मत करो। जानबुझकर कुछ धुर्त लोगों ने भारतीय समाज के इतिहास को तोड़–मरोड़ कर लिखा है, जिससे आज का समाज काफी दिग्भ्रमित है।

तुलसीदास की लेखनी सही लग रही है, आपको क्या?

क्या, ऐसा हो सकता है?

(9) तुलसीदास सदा हरि चेरा।

कीजै नाथ हृदय महँ डेरा।। 40।।

ये हनुमान चालीसा का 40वाँ श्लोक है।

क्या पाठकगण इसका अर्थ बता सकते हैं?

अर्थ – तुलसीदास सदा हरि या भगवान की सेवा किये हैं, इसलिए नाथ या प्रभु आप मेरे हृदय में रहे। (तुलसीदास का जन्म 1497 ⁄ 1532 ईस्वी में और राम जी का जन्म कब ..?)

रामायण कथा के अनुसार ये पूरी दुनिया को मालूम है कि हनुमान जी प्रभु राम जी और सीता जी की सेवा किये हैं, फिर भी हनुमान जी आज तक स्वयं कभी भी या किसी भक्त से भी कहलाना पसंद नहीं किये कि हनुमान जी प्रभु की सेवा किये हैं, इसलिए श्री राम जी कृपया आप हनुमान जी के हृदय में रहें।

लेकिन तुलसीदास को देखो! राम जी कब जन्म लिए या नही लिए, सही या गलत किसी को पता नहीं! लेकिन तुलसीदास मुगल शासक बाबर

– अकबर के समकालीन थे। ये सबको पता है! फिर बताओ! जब दोनों का जन्म साथ नहीं था? तो सेवा का प्रश्न कैसा? फिर भी ये हर हनुमान चालीसा पढ़ने वाले से क्यों कहलाना चाहते हैं? तुलसीदास अपनी झूठी प्रशंसा क्यों करवा रहे हैं? क्यों भ्रम फैला रहे हैं?

इससे अच्छा होता कि हर "हनुमान चालीसा' पढ़ने वाले भक्त चालीसा पढ़ते समय कहते कि –

" मैं अपना नाम सदा हरि चेरा।
कीजै नाथ हृदय महँ डेरा।। 40।।'

कारण साफ है, ये हनुमान चालीसा जिसको श्रद्धापूर्वक हर भक्त लोग पढ़ते हैं। यह हनुमान चालीसा तुलसीदास के जन्म से पहले का है या कब का है ये पता नहीं है? लेकिन हम–आप सभी को तुलसीदास का एक घुसपैठिये छंद के माध्यम से अपनी वाह–वाही लुटने की नियत साफ दिख रही है। ये तो ''अपने मुँह मियाँ मिठ्ठू'' वाली बात है। जैसे – किसी सेठ जी का मकान मजदूर बनाता है, परन्तु लोग या मजदूर कहता है कि सेठ जी मकान बना रहे हैं, क्योंकि वह सेठ जी का मजदूर है। उसी प्रकार से, ये तो ऐसा ही हुआ कि पूजा आप करें और कहें कि तुलसीदास सदा पूजा या सेवा किये हैं, यानि आप तुलसीदास के मजदूर।

अगर किसी की प्रशंसा ही करवाना था, तब सबसे बेहतर होता की बजरंगबली की करवाते।

जैसे – बजरंगबली सदा हरि चेरा।
कीजै नाथ हृदय महँ डेरा।।

(10) तुलसीदास के ऊपर सबसे बड़ा प्रश्न चिन्ह?

तुलसीदास जिस जन्मतिथि में पैदा हुए और जो जन्म लेने का स्थान रहा था? क्या उस पर किसी ने कभी गौर किया है, क्या?

"तुलसीकृत' रामचरित मानस में लिखा मिलता है, रामजी जहाँ खेले, वहाँ "गुलेला मंदिर' है। जहाँ पढ़ाई की वहाँ "वशिष्ठ मंदिर' है। जहाँ

बैठकर राज किया वहाँ "मंदिर' है, जहाँ खाना खाया वहाँ "सीता रसोई' है। जहाँ भरत रहे वहाँ "भरत मंदिर' है। वहाँ "हनुमान मंदिर' है। कोप भवन है। सुमित्रा मंदिर है। दशरथ भवन है, आदि ऐसे कई सुंदर–सुंदर मंदिर हैं।

सबसे बड़ी बात है कि इन सब मंदिरों की उम्र पुरातत्व विभाग के अनुसार 700–800 साल है। यानी ये मंदिर तब बने जब भारत पर पाल वंश के बाद छोटे–छोटे राजपूत राजाओं का उदय हो गया था और उनके दरबार में ब्राह्मण नाम की प्रजाति वास करना शुरू कर दिया था और आगे उसी जगह संभवतः बाबर ने उस मंदिर को तोड़कर बाबरी मस्जिद बनवायी।

अब सबसे बड़ा प्रश्न यह खड़ा हो जाता है कि जिस **"बाबरी मस्जिद'** को आज भारतीय स्वाभिमान के ऊपर कुठाराघात व आतातायी बाबर का कलंक बोला जाता है और फिर, जब मुगल शासक "बाबर' श्रीरामजी के मंदिर को तोड़कर उस जगह पर बाबरी मस्जिद बना रहा था, तब क्या उस समय तुलसीदास को मालूम नहीं था? या किसी लोभ में आकर बाबर से मिल गए थे? या मालूम होते हुए भी बाबर से डर गए, आखिर सच क्या है? तुलसीदास इसकी चर्चा या जानकारी कहीं लिखे क्यों नहीं? अब तो तुलसीदास पर भी संदेह पक्का होने लगा है कि उन्होंने मुगल शासक से मिलकर यह काम किया। क्योंकि तुलसीदास का यौवन काल उसी समय के आसपास का है। इतिहास कहता है कि 1528 में ही बाबर ने राम मंदिर तोड़कर बाबरी मस्जिद बनवाई थी। तुलसीदास ने तो देखा या सुना जरूर होगा उस बात को। बाबर, श्री रामजी के जन्मस्थल को तोड़ रहा था और तुलसी लिख रहे थे कि "माँग के खाइबो मसीत में सोइबो' और फिर उन्होंने **"रामचरित मानस'** और अन्य ग्रन्थ भी लिख डाला। राम मंदिर के टूटने का और बाबरी मस्जिद बनने का क्या तुलसीदास को जरा भी अफसोस न रहा होगा..? उस समय तुलसीदास की एक और पुस्तक **"विनय पत्रिका'** भी निकालती थी। उसमें भी मुगलों के आतंक या मंदिर को तोड़े जाने की चर्चा क्यों नहीं लिखा गया? हिन्दुओं पर जजिया कर (टैक्स) लगाने जैसी बातों

को क्यों नहीं लिखा? मुगलों के आतंक की भयावहता को देखकर 1469 ईस्वी में जन्मे "सतगुरू नानक देव' जी के शिष्यों ने मुगलों से लड़ने के लिए अपनी "सरदार सेना' का निर्माण किया और उस सेना के द्वारा काफी लम्बी लड़ाई मुगलों के विरूद्ध लड़ी गई, फिर भी तुलसीदास ने इन बातों को अपनी "विनय पत्रिका' या अन्य जगह पर क्यों नहीं लिखा? संत गुरू नानकदेव जी ने ब्राह्मणों के पाखण्ड और ब्राह्मणों द्वारा मुगलों के चमचागिरि से अजीज आकर अलग "एकेश्वरवादी धर्म' की स्थापना की, फिर भी तुलसीदास ने इन सब बातों को छोड़कर ब्राह्मणों की पाखंड नीति का सर्मथन कर भारतीय सभ्यता को नुकसान पहुँचाया। क्यों? क्या "बाबर' के आतंक का प्रभाव तुलसीदास पर था....? या बाबर के बाद "हुमायूं' का भय हुआ ...? हुमायूं के बाद अकबर का आतंक हुआ ...? तुलसीदास ने इस मुगलिया आतंक को कहीं लिखा क्यों नहीं ...? आपको क्या लगता है तुलसीदास को डर था ? या मुगलों से मिलकर हिन्दू एकता को छिन्न–भिन्न करना था..? ... अकबर के दरबार में नवरत्न रहे **"टोडरमल'** तुलसीदास के काफी अच्छे मित्र माने जाते थे, इसकी चर्चा **"तुलसी जयंती पुस्तक'** में भी मिलती है। आखिर तुलसीदास ने हिन्दू समाज को धोखा क्यों दिया?

ज्ञातव्य हो कि ब्राह्मण लेखकों के अनुसार तुलसीदास की मृत्यु अकबर के पुत्र जहांगीर के समय 1623 ईस्वी में हुई थी। इसीलिए आज यह उक्ति समाज में प्रचलित है कि –

"भारत में लेखक या पंडित अपनी बुद्धिमानी से ज्यादा समाज में व्याप्त अशिक्षा और गरीबी की वजह से सर्वश्रेष्ठ बना बैठा है '

अब आपको सही और गलत का आकलन करना है।

!! आइये इन सब बातों का सही व प्रमाणिक रूप से विस्तार पूर्वक आकलन करते हैं!!

आकलन नं0 –01

चलिए हमलोग लेखक और पंडितों की लिखी हुई बातों की तुलनात्मक चर्चा करते हुए भारत के तथ्यपरक इतिहास की ओर चलते हैं, इस इतिहास का पुरातात्विक साक्ष्य वास्तविक रुप से प्रमाणिकता के साथ मौजूद है।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी (लगभग 550 ई. पू.) से विस्तार से चर्चा करते हैं –

देखते हैं कि उस समय के सम्राटों का काल कैसा था?

उस समय जिन्दगी जीने की व्यवस्था क्या और कैसी थी?

उस समय में धर्म के नाम पर कितनी आडम्बर और रूढ़िवादिता थी?

उस समय में सवर्ण कौन, दलित कौन, पिछड़ा कौन, ब्राह्मण कौन, क्षत्रिय कौन, वैश्य कौन तथा शूद्र कौन थे और उनकी सामाजिक संरचना कैसी थी?

देखते हैं कि उस समय कौन से छल–प्रपंच के द्वारा इंसान–इंसान के बीच में जातियों द्वारा भेदभाव पैदा किया गया था?

हर्यंक वंश

(ज्ञात सबसे प्राचीन राजवंश)

ईसा पूर्व 544 ईस्वी – ईसा पूर्व 413 ईस्वी

हर्यंक साम्राज्य –

राजधानी – राजगृह, बाद में पाटलिपुत्र

भाषा – प्राकृत,पाली

धर्म – बौद्ध

राजा – बिम्बिसार (544 ईस्वी पूर्व से 492 ईस्वी पूर्व तक)

मगध के राजा बिम्बिसार को मगध साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक माना जाता है। उन्होंने ''गिरिव्रज'' (राजगीर) को अपनी राजधानी बनाया था। वे पन्द्रह वर्ष की आयु में ही राजा बने। कोशल, वैशाली एवं पंजाब आदि के राजाओं से वैवाहिक संबंधों की नीति अपनाकर

राजा बिम्बिसार ने अपने साम्राज्य का बहुत विस्तार किया। राजा बिम्बिसार ''गौतम बुद्ध'' के सबसे बड़े प्रश्रयदाता थे। अपने पुत्र 'अजातसत्तु' (संस्कृत–अजातशत्रु) के लिए राज–पाट त्यागने से पूर्व 52 (बावन) वर्ष इन्होंने राज किया। प्रसेनजित की बहन और कोशल की राजकुमारी 'महाकोशला' इनकी पत्नी और अजातशत्रु की माँ थीं। इस विवाह से उसे काशीग्राम (आधुनिक बनारस) दहेज में प्राप्त हुआ। (1) ''चेल्लना'' वैशाली के लिच्छवि वंश की राजकुमारी। (2) ''क्षेमा'' पंजाब (मद्रदेश) की राजकुमारी। ''सीलव'' और ''जयसेना'' नामक इनकी अन्य पत्नियाँ भी थीं। विख्यात वीरांगना ''अम्बापालि'' से इनका 'विमल कोन्दन्न' नामक पुत्र भी था। बिम्बिसार ''भगवान बुद्ध'' के उपदेशों से बहुत ही ज्यादा प्रभावित थे। और इसी कारण से उनकी पत्नी भिक्षुणी बन गई थीं। सिन्ध के शासक 'रूद्रायन' तथा 'गांधार' के शासक 'मुक्कुरगति' से भी बिम्बिसार का दोस्ताना सम्बन्ध था। उसने ''अंग राज्य'' को जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लिया था। वहाँ अपने पुत्र अजातशत्रु को उपराजा नियुक्त किया।

आज भी राजा बिम्बिसार का किला और जेल, राजगीर (बिहार) में दखने को मिल सकता है।



उत्तराधिकारी – अजातशत्रु (492–460 ई0पू0)

धर्म – बौद्ध, जैन

उत्तराधिकारी – उदयभद्र

धर्म – बौद्ध, जैन

उत्तराधिकारी – शिशुनाग

कहा जाता है कि अजातशत्रु अपने पिता की हत्या कर राज–पाट प्राप्त किया था। उसके शासनकाल के आठवें वर्ष में बुद्ध की मृत्यु हुई थी। उसके शासनकाल में ही 483 ई0पू0 में राजगृह के सप्तकर्णि गुफा में प्रथम बौद्ध संगीति का आयोजन किया गया था।

उदयन (460–440 ई0पू0)

उदयन ने पाटलिपुत्र (वर्त्तमान पटना) नगर की स्थापना की और इसे अपनी राजधानी बनाया। उदयन के बाद के शासक कमजोर थे और 412 ई0पू0 तक शासन किये। अंतिम शासक नागदसक को उसके मंत्री शिशुनाग ने हटाकर स्वयं गद्दी पर बैठ गया।

शिशुनाग वंश

(412–344 ई0पू0)

शिशुनाग – इसने वैशाली को अपनी राजधानी बनाया।

कालाशोक – इसके शासन काल में 383 ई0पू0 में वैशाली में द्वितीय बौद्ध संगीति का आयोजन हुआ था, जिसमें बौद्ध संघ दो सम्प्रदायों – स्थाविर और महासंघिक में विभाजित हो गया। (स्रोत – बौद्ध ग्रन्थ – दीपवंश)।

राजधानी – वैशाली, बाद में पाटलिपुत्र

भाषा – प्राकृत,पाली

धर्म – बौद्ध, जैन

उत्तराधिकारी – महानन्दिन

अंत – ईसा पूर्व 344 ईस्वी

नंद साम्राज्य

नंद वंश बहुत ही कम दिनों तक मगध साम्राज्य पर शासन कर पाया। ये ईसा पूर्व 345 से ईसा पूर्व 321 तक रहे। इसके संस्थापक शासक महापद्मनन्द थे और इनके बाद इनके पुत्र धनानन्द शासक बने। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि महापद्मनन्द महानन्दिन (शिशुनाग वंश के शासक) के ही पुत्र थे। चन्द्रगुप्त मौर्य ने धनानन्द को पराजित कर नन्द राजवंश को समाप्त कर दिया था। धनानंद सिकंदर का समकालीन था। उसका उल्लेख सिकंदर के इतिहासकारों (कर्टियस और डायोडोरस) ने किया है।

ईसा पूर्व 321 (नन्द राजवंश) के बाद तक्षशिला विद्यालय में पढ़ने के साथ–साथ सभी विद्यार्थी एवं आचार्य कार्य करते थे। ध्यान–पूजा के लिए सिर्फ भगवान बुद्ध की प्रतिमा अवस्थित थी, जिसका सभी स्मरण किया करते थे।

मौर्य साम्राज्य

संस्थापक (Founder of the Maurya Empire) – चन्द्रगुप्त मौर्य

माता जी का नाम – मुरा मौर्य (प्राकृत लिपि में मौर्य को मोरया लिखा जाता था)

पिता जी का नाम – सवाथिसिद्धि मौर्य

सम्राट चन्द्रगुप्त ने अपने माता–पिताजी के नाम पर ही मौर्य वंश का नामकरण किया।

समय – ईसा पूर्व 321 – ईसा पूर्व 298

राजधानी – पाटलिपुत्र

भाषा – प्राकृत,पाली

धर्म – बौद्ध, जैन

आज के इतिहास लेखकों के अनुसार युगपुरूष – विष्णु गुप्त (बचपन का नाम कौटिल्य)

जन्म – ईसा पूर्व 370, मृत्यु – ईसा पूर्व 283, स्थान – पाटलिपुत्र

शिक्षक – (अर्थशास्त्र) तक्षशिला विश्वविद्यालय

बहुत ही कुशाग्र बुद्धि के थे, इसलिए तक्षशिला में ''चाणक्य'' की उपाधि मिली

सलाहकार – सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में नियुक्त

नोट :– परन्तु मेगास्थनीज, जो चन्द्रगुप्त मौर्य के दरवार में काफी वर्षों तक रहे, लेकिन ''चाणक्य'' विष्णुगुप्त नाम के किसी व्यक्ति की चर्चा कतई नहीं किये। यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि किसी भी यूनानी लेखक ने चाणक्य विष्णुगुप्त अथवा संस्कृत भाषा का उल्लेख नहीं किया है। दूसरी बात चाणक्य द्वारा निर्देशित या स्वलिखीत एक भी शीलापट्ट आज तक नहीं मिला है। तीसरी बात कि आज के इतिहास लेखकों के अनुसार चाणक्य को सिर्फ देवनागरी लिपि और संस्कृत भाषा आती थी परन्तु उस समय के काल में देवनागरी लिपि और संस्कृत भाषा के प्रयोग का कोई अवशेष या साक्ष्य नहीं मिलता हैं। चौथी बात कि उस समय, जब ये भाषा नहीं थी तो ये राज दरबार में लोगों से बात कैसे करता था? कुछ लोग कहतें हैं कि जब संस्कृत भाषी चाणक्य मौर्य राजाओं से संवाद नहीं करता था, तब यूनानी भाषी मेगास्थनीज संवाद कैसे करता था? श्रीमान, अशोक ने ब्राह्मी, खरोष्ठी, अरामाईक और यूनानी चारों में अपना अभिलेख लिखवाया है। परन्तु संस्कृत में नहीं क्यों? अरामाईक और यूनानी में उसका द्विभाषीय राज्यादेश भी है। मौर्यों के दरबार में सभी के दुभाषिए थे, परन्तु संस्कृत के दुभाषिए नहीं थे। संस्कृत थी ही नहीं! तो फिर संस्कृत दुभाषिए का तो सवाल ही नहीं उठता है। इसलिए अशोक का कोई भी अभिलेख संस्कृत में नहीं है। आप समझ गए होंगे कि मौर्य राजाओं से यूनानी राजदूत मेगास्थनीज कैसे संवाद करता था। ये अशोक का यूनानी और अरामाईक में द्विभाषीय अभिलेख देख लीजिए।

मेगास्थनीज (Megasthenes) ईसा पूर्व 350 ई0 से ईसा पूर्व 230 ई0

मेगास्थनीज यूनानी शासक का राजदूत था जो भारत में 305 ईसा पूर्व में चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में आया था। वह सेल्यूकस नामक यूनानी सेनापति का दूत था। वह कई वर्षों तक चन्द्रगुप्त मौय के दरबार में रहकर भारत की सभ्यता–संस्कृति को देखकर "इंडिका' (INDICA) नामक ग्रन्थ लिखा। वस्तुतः इंडिका की मूल प्रति खो चुकी है, लेकिन कुछ यूनानी लेखकों के द्वारा इंडिका में वर्णित तथ्यों का उल्लेख अपनी–अपनी पुस्तकों में किया गया है। उन्हीं पुस्तकों से मेगास्थनीज के द्वारा लिखित तथ्य प्रकाश में आये हैं। 17वीं और 18वीं शताब्दी में इंगलैंड के विद्वानों ने यूनानी पुस्तकों का अंग्रेजी अनुवाद किया था, जिसके बाद ही यह सब जानकारी भारत आई। ब्रिटिश शासन काल में भारत के लोगों ने उसे अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद किया। इसके बाद ही भारतीय लोगों को चन्द्रगुप्त मौर्य और उनके शासन काल की सही –सही जानकारी प्राप्त हुई। 19वीं शताब्दी से लेकर आज तक भारतीय लेखकगण इसकी व्याख्या अपने–अपने मनोनूकुल करते आ रहे हैं और अपनी बातों को शामिल कर ''मेगास्थनीज'' के तथ्यों को तोड़–मड़ोड़ कर पेश करते है, जिससे आज भ्रम हुआ फैला है।

यहाँ एक उल्लेखनीय तथ्य यह है भी कि प्रथम शताबदी ईस्वी के बाद में ''एरियन'' नामक यूनानी लेखक ने भी एक ''इंडिका'' (ग्रीक–Ivolkn Indike) नाम से पुस्तक लिखी। परन्तु इसमें सिकन्दर और उसके सेनापति ''नियार्कस'' की कहानी है। लेकिन कुछ वर्णन भारत के भौगोलिक व सांस्कृतिक महत्व के भी हैं। एरियन की बातें सुनी–सुनाई गई तथ्यों पर आधारित है, जबकि मेगास्थनीज पाटलिपुत्र मे रहकर वस्तुस्थिति को देखने के बाद पुस्तक लिखा था। इन दोनों पुस्तकों का नाम समान होने की वजह से वास्तविक इंडिका के बारे में भ्रम उत्पन्न हो जाता है। समान्य लोग इन सारे तथ्यों को नहीं जानने के कारण बाद की इंडिका को ही असली समझ बैठते हैं। जबकि बाद की इंडिका पुराने इंडिका के नाम पर और उसी के अन्दर लिखी हुई बातों को अपना आधार मान कर लिखी गई थी। इस एरियन का जीवन काल ईसा बाद 95 ई0 से 175 ई0 था। यह एरियन भारत

नहीं आया था बल्कि (एशिया माइनर) भारतीय उप महाद्वीप के बाहर में रहा था। वह सैकड़ों साल पूर्व की घटनाओं को सुनी–सुनाई बातों के आधार पर लिखा था। इस एरियन की इंडिका में वर्णित भारतीय सामाजिक तथ्यों को विश्वसनीय नहीं माना जाता है, परन्तु पाकिस्तान और ईरान के बीच समुद्र तटीय इलाकों में रहने वाले तात्कालिक लोगों से संबंधित विवरण महत्वपूर्ण है, क्योकि उन्ही क्षेत्रों में वह कुछ समय तक रहा था।

मूल इंडिका में वर्णित कुछ महत्वपूर्ण तथ्य

मेगास्थनीज ने अपने दृष्टिकोण से यहाँ के समाज को प्रभावित करने वाले वर्ग यानि उनके हैसियत एवं पेशे के हिसाब से (तरलता के साथ बदलने वाला वर्ग) सात भागों में बांटा है– (1) विद्वान वर्ग (2) कृषक वर्ग (3) पशुपालक वर्ग (चरवाहा) (4) कारीगर वर्ग (5) सैनिक वर्ग (6) दुकानदार वर्ग (7) गरीब वर्ग ।

मेगास्थनीज ने भारतीय लोगों को पतले, लंम्बे और हल्के शरीर वाला फुर्तीला बताया है। यहाँ के सैनिक या योद्धा कृषक या पशुपालक का बहुत सम्मान करते थे, युद्ध के दौरान फसलों और पशुओं को कोई नुकसान नहीं पहुंचाया जाता था।

यहाँ विभिन्न पेशागत लोग रहते हैं, वे सभी यहाँ के मूल निवासी हैं। यहाँ पर विदेशी लोगों की कोई बस्ती नहीं हैं।

यूनानी समाज के विपरीत यहाँ पर गुलामी प्रथा बिलकुल नहीं है। यहाँ के सामाजिक नियम के अनुसार सभी लोगों को समान माना जाता है, कोई विशिष्ट वर्ग मौजूद नहीं हैं।

(1) विद्वान वर्ग (Philosophers)– किसी भी समाज के लोग विद्वान हो सकते है और उस विद्वान वर्ग को सभी लोग प्रमुखता देते हैं।

(2) कृषक वर्ग (Farmers)– सबसे अधिक जनसंख्या इनकी है।

द्वितीय सबसे महत्वपूर्ण वर्ग। इन्हे राजकीय बंधनों से छूट प्राप्त थी। राजा इन पर किसी कार्य के लिए बल प्रयोग नहीं कर सकता था। ये गावों में रहते थे और किसी कार्यवश शहर आते–जाते थे। ये उपज का चौथा भाग राजकोष में राजस्व के रुप में देते थे।

(3) पशुपालक वर्ग – (पशुपालक व शिकारी) ये गांव के बाहर झोपड़ी बनाकर रहते थे और फसल को नुकसान पहुंचाने वाले पशु–पक्षियों का शिकार करते थे। यह समाज का एक अन्य महत्वपूर्ण वर्ग था।

(4) कारीगर वर्ग – ये किसानों के खेती के औजार के साथ–साथ युद्ध के हथियार भी बनाते थे। ये करों से मुक्त थे और इन्हें राज्य से वेतन मिलता था।

(5) सैनिक वर्ग – कृषकों के बाद इनकी संख्या सर्वाधिक थी। इनके पास घोड़ें और हाथी होते थे, इन्हें राजा से नियमित वेतन मिलता था।

(6) राजकीय कर्मचारी – सभासद और कर निर्धारक (Councillors and Assesors) ये लोग ऊँच राजकीय पदों पर नियुक्त होते थे और विभिन्न प्रकार के प्रशासकीय व वितीय कार्य करते थे।

नोट – उस समय का सारा वर्ग तरल था यानि कि कोई भी वर्ग अपने अनुभव और कार्य के आधार पर किसी भी वर्ग में जा सकता है, लेकिन आज ये सारा वर्ग तरल से ठोस में बदलकर "**वर्ण**' (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र) में बदल गया है, जो मरणोपरान्त ही खत्म होता है।

स्रोत :– मेगास्थनीज की "इंडिका' पुस्तक के तथ्यों का उल्लेख डयोडोरस (Dayodoras), सिकूलस (Sicules), स्ट्राबो (Strabo) भूगोल का लेखक, प्लीनी (Plini) तथा एरियन की "इंडिका' में मिलता है।

मेगास्थनीज द्वारा वर्णित तथ्यों को J.W.Mccrindle ने एकत्र कर पुस्तक का रुप दिया है।

चन्द्रगुप्त का उत्तराधिकारी – बिन्दुसार मौर्य

समय – ईसा पूर्व 298 – ईसा पूर्व 272

बच्चे – अशोक मौर्य, सुसीम मौर्य, विटाशोक मौर्य

उत्तराधिकारी – अशोक मौर्य (अशोका द ग्रेट, चक्रवर्ती सम्राट)

समय – ईसा पूर्व 272 – ईसा पूर्व 232

धर्म – बौद्ध

सम्राट अशोक

प्राचीन भारत में मौर्य राजवंश का ही नहीं बल्कि इस युग का सबसे प्रसिद्ध राजा अशोक था। उनके समय में मौर्य राज्य उत्तर में हिन्दूकुश की श्रेणियों से लेकर दक्षिण में गोदावरी नदी के दक्षिण तथा मैसूर तक तथा पूर्व में बंगाल से पश्चिम में अफगानिस्तान तक पहुँच गया था। यह उस समय तक का सबसे बड़ा भारतीय साम्राज्य था। सम्राट अशोक को अपने विस्तृत साम्राज्य एवं बेहतर कुशल प्रशासन तथा बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए जाना जाता है। आप भी अशोक के अभिलेख पढ़े होंगे। अशोक के अभिलेख में संस्कृत की शब्दावली नहीं है। जब अशोक के समय में संस्कृत की शब्दावली नहीं है, तब गौतम बुद्ध के समय में संस्कृत की शब्दावली की कल्पना बेकार की बात है। आर्य–सत्य, यशोधरा, सिद्धार्थ, ऋषिपतन जैसी संस्कृत के नियम–कायदों से बनी शब्दावली बाद की है। आर्य–सत्य से अरिय–सच्च की ओर चलना उल्टी यात्रा है। हमें अरिय–सच्च से आर्य–सत्य की ओर चलना होगा। जीवन के उत्तरार्ध में सम्राट अशोक महा मार्गदाता गौतम बुद्ध के भक्त हो गये और उन्हीं की स्मृति में उन्होंने एक स्तम्भ खड़ा कर दिया जो आज भी नेपाल में उनके जन्मस्थल – लुम्बिनी में मायादेवी मन्दिर के पास अशोक स्तम्भ के रूप में देखा जा सकता है। उसने बौद्ध धर्म का प्रचार भारत के अलावा श्रीलंका, अफगानिस्तान, पश्चिम एशिया, मिस्र तथा यूनान में करवाया और स्वयं भी प्रचार–प्रसार किया।

सबसे बड़ा प्रश्न चिन्ह भारत के लेखक और समाज के प्रबुद्ध लोगों के ऊपर लगता है कि आज तक सम्राट अशोक या इनके अन्य वंशजों का किसी भी समय या अवस्था का फोटो भारतीय जनमानस को नहीं दिखा पाये हैं, परन्तु हजारों वर्ष पूर्व के काल्पनिक देवताओं की काल्पनिक फोटो को समाज के सामने रखकर भारतीय जनमानस को दिग्भ्रमित करने का काम बहुत ही अच्छे प्रकार से किया जा रहा है।

आज तक भारत के लेखक इस बात का विवरण नहीं दे पाये हैं कि सम्राट अशोक के कर्मठ जीवन का अंत कब, कैसे और कहाँ हुआ। तिब्बती परम्परा के अनुसार उसका देहावसान तक्षशिला में हुआ था। उसके एक शिलालेख के अनुसार अशोक का अंतिम कार्य भिक्षुसंघ को एक जुट कर

भगवान बुद्ध के ज्ञान का प्रचार करना था। सम्भवतः यह घटना बौद्धों की तीसरी संगीति के बाद की है। सिंहली (श्रीलंका) ऐतिहासिक ग्रंथों के अनुसार बौद्धों की तीसरी संगीति (249 ईसा पूर्व में) अशोक के राज्यकाल में पाटलिपुत्र में हुई थी। यानि कि सम्राट अशोक की मृत्यु पाटलिपुत्र में हुई थी।

परन्तु भारत के अंदर छद्म बुद्धिजीवी, रूढिवादी और ब्राह्मणवादी लेखक एवं उनके अनुयायी लोग सम्राट अशोक के समय से हजारों–लाखों साल पूर्व के लोगों की जीने–मरने की कहानी का वर्णन ऐसे करते हैं, जैसे ये लोग घटना के समय साक्षात् उपस्थित रहे थे? भाई, जब भारत का लेखक और इतिहासकार इन आज–कल के महान व्यक्तियों की सच्ची कहानी कहने और लिखने के समय में आसमान के तारे गिनने लगते हैं, तब उस अनादि–अनादि काल की घटना को कैसे लिख और बोल सकते हैं। आप खुद आकलन कीजिये?

उत्तराधिकारी – कुणाल मौर्य और जालौक मौर्य

समय – 232 ईसा पूर्व – 224 ईसा पूर्व

धर्म – बौद्ध

उत्तराधिकारी – दशरथ मौर्य और सम्प्रति मौर्य

समय – ईसा पूर्व 215 – ईसा पूर्व 202

उत्तराधिकारी – देव वर्मन मौर्य

धर्म – बौद्ध

समय – ईसा पूर्व 202 – ईसा पूर्व 195

उत्तराधिकारी – सतधन्वान मौर्य

धर्म – बौद्ध

उत्तराधिकारी – बृहद्रथ मौर्य

धर्म – बौद्ध

अंतिम मौर्य शासक – वृहद्रथ मौर्य

समय – ईसा पूर्व 187 – ईसा पूर्व 185

अपने सेनापति (Commander-in-Chief), पुश्यमित्र सुंग के हाथों मारे गए।

ईसा पूर्व 185, मौर्यों के बाद :–

सुंग वंश

शासक – पुश्यमित्र सुंग (185 ईसा पूर्व – 73 ईसा पूर्व)

पुश्यमित्र सुंग मौर्य साम्राज्य का सेनापति था

भाषा – प्राकृत,पाली (प्रमाण सांची स्तूप का शिलापट)

धर्म – बौद्ध,

पुरातात्विक प्रमाण–सांची के बौद्ध स्तूप का पुनरूद्धार एवं सौन्दर्यीकरण का कार्य पुश्यमित्र सुंग के काल में किया गया। 1965 ई0 में सुंग काल के समय का अंबाला के सुघ से मिट्टी का खिलौना मिला है। एक बालक गोद में तख्ती लिए बाराखड़ी सीख रहा है। तख्ती पर वह अ, आ, इ से लेकर अं और अः तक कुल 12 स्वराक्षर लिख रहा है, जिन्हें उसने 4 बार दुहराया है। कार्बनडेटिंग की वैज्ञानिक पद्धति से उस खिलौने की आयु सुंग काल के आस–पास की मिलती है। बहरहाल, हरियाणा के अंबाला जिले से मिला वह खिलौना दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में है। लिपि वैज्ञानिकों ने इसी आधार पर बताया है कि प्राकृत वर्णमाला में सुंग काल से पहले ''ऋ'' स्वराक्षर नहीं था, अन्यत्र भी नहीं मिलता है। ''ऋ'' संस्कृत की विशिष्ट ध्वनि है। जब सुंग काल तक ''ऋ'' का लेखन अस्तित्व में नहीं था, तब ऋग्वेद, ऋषि, ऋत्विज जैसे ''ऋ'' से जुड़ी शब्दावली भी लेखन में नहीं थी। सबसे बड़ी बात कि उस काल में संस्कृत का कोई साक्ष्य नहीं मिला है और उस काल में जो लिपि प्रयोग में आती थी वो लिपि पाली थी और पाली लिपि की भाषा में कुछ ध्वनियां नहीं होती थी, जैसे– ् र् ृ क्ष त्र ज्ञ श्र। फिर इन ध्वनियों से बनने वाले शब्द (ब्राह्मण) कैसे? आज के कुछ इतिहासकारों का मत है कि सुंग ब्राह्मण था, मेरा इस पर प्रश्न है? पहली बात कि उस समय ब्राह्मण का नामो–निशान नहीं मिलता। दूसरी बात अगर सुंग ब्राह्मण था तो सेनापति कैसे? ये तो सुरक्षा का काम है, जो मनु स्मृति के अनुसार क्षत्रिय कर सकता है। फिर ये ब्राह्मण नहीं हो सकता है। यह हो सकता है कि ''भगवान बुद्ध'' के अनुयायी बृहद्रथ मौर्य के शासन को छलपूर्वक हासिल करने के कारण ''सुंग'' पूर्व के विचार से विपरीत अपने अलग विचार से काम किया होगा,

जिसकी वजह से आज के इतिहासकार बौद्ध और मौर्य का दुश्मन समझ इसे ब्राह्मण बनाने पर तुले हैं। या कहें तो आज के ब्राह्मण अपने को पूर्वकालीन सिद्ध करने के लिए सुंग से जोड़ कर बताते हैं या मनोनूकुल काल्पनिक कहानी लिख रहे हैं।

उत्तराधिकारी – अग्निमित्र सुंग

उत्तराधिकारी – वसुज्येष्ठ सुंग

उत्तराधिकारी – वसुमित्र सुंग

उत्तराधिकारी – देवभूति सुंग

ईसा पूर्व 73 ईस्वी सुंग के बाद :–

कण्व वंश

(73 ईसा पूर्व – 28 ईसा पूर्व)

संस्थापक – वासुदेव।

इसने अंतिम सुंग शासक देवभूति की हत्या कर कण्व वंश की स्थापना की। मौर्य वंश की समाप्ति के बाद देश की उत्तर–पश्चिम सीमाएं असुरक्षित हो गई। परिणामस्वरूप अनेक विदेशी शासकों का आगमन भारत में हुआ। इनमें प्रमुख थे– हिन्द बैक्ट्रियाई (यूनानी), शक, पह्लव और कुषाण। इनमें कुषाणों ने सबसे अधिक प्रभाव भारत पर छोड़ा और कालान्तर में भारतीय सभ्यता में घुल मिल गये।

मौर्यों के बाद भारत पर विदेशी आक्रमण

- संभवतः सिकन्दर के बाद 183 ईसा पूर्व भारत पर आक्रमण करने वाला पहला यवन (यूनानी या रोमन) आक्रमणकारी डेमेट्रियस (पिता यूथीडेमस) प्रथम अथवा दमित्र था। उसका सेनापति मिनाण्डर था। मिनाण्डर बाद में बौद्ध हो गया और भारत पर अनेक वर्षों शासन किया। डेमेट्रियस ने भारतीय राजाओं की उपाधि धारण कर यूनानी तथा खरोष्ठी लिपि में अपने चित्र वाले सिक्के भी चलवाये थें जिसके साक्ष्य उपलब्ध हैं।

- इन्हें हिन्द–यूनानी शासक भी कहा जाता है। मिनान्डर इनमें सबसे महान शासक था।
  महायान ग्रन्थ "मिलिन्दपन्हो' में मिनान्डर (मिलिन्द) (160 ई0पू0 से 140 ई0पू0) के कार्यो का वर्णन है।
- उसके सिक्कों पर पहली बार धम्मचक्र, हाथी के चित्र आदि मिले हैं। उसके सिक्के उत्तरी भारत के कई स्थानों से मिले हैं।

शक वंश

(प्रथम सदी ई0पू0 के आस–पास)

- शक वंश (सीथयन) का वर्णन प्राचीन चीनी ग्रन्थों में मिलता है। शक या सिथियन मध्य एशिया के निवासी थें। चीन की लंबी दीवार बन जाने के करण उन्हें वहाँ से विस्थापित होना पड़ा भारत में आकर वे कई शाखाओं में बंट गए। इनमें तक्षशिला के शक शासक सबसे प्रसिद्ध हैं। भारत का प्रथम शक शासक मोयेज अथवा मोग था। इसने गंधार में प्रथम शक वंश की स्थापना की। तक्षशिला ताम्रपत्र में इसका उल्लेख मिलता है। इसका काल संभवतः प्रथम सदी के आस–पास है। इन्हीं शक शासकों के द्वारा भारतीय हिन्दी कैलेण्डर या पंचांग की स्थापना की गयी थी। जो आज अपने बीच में "शक सम्वत्' के नाम से प्रचलित है। शक (सम्वत् पंचाग) ईसा के बाद 78 ईस्वी से शुरू हुआ था, इसलिए (अंग्रेजी कैलेण्डर) ईस्वी से 78 वर्ष कम रहता है यानि की ईस्वी में 78 कम कर दीजिए तब आपको "शक सम्वत्' मालूम हो जायेगा। (ईस्वी साल – 78 = शक सम्वत् साल) तक्षशिला से प्राप्त ताम्रपत्र पर संवत्–'789' लिख हुआ है।
- इसने अपने नाम के सिक्के ढलवाए, जिन पर यूनानी देवताओं के अतिरिक्त बुद्ध की आकृतियाँ हैं। दुसरी आकृति में एक आसन लगाए हुए निर्वस्त्र व्यक्ति का चित्र है।

पहलव अथवा पार्थियन

शकों के बाद पहलवों का आक्रमण भारत पर हुआ। इनका मूल स्थान ईरान में कहीं था और वहीं से वे भारत की ओर आये।

- सन् 20 इस्वी में गोहदोफैरस ने पहलव साम्राज्य का प्रारम्भ किया। इसे 'हिन्दी–पार्थियन' राज्य कहा गया है।

- पहलवों का वास्तविक संस्थापक मिथ्रेडेटस था। भारत का प्रथम पहलव शासक माउस या मोथ (90–70 ई0पू0) था। इस वंश का सबसे महत्वपूर्ण शासक गोंदोफर्निस (20–41 ई0) था। इसकी राजधानी तक्षशिला में थी। गोंदोफर्निस के शासक काल में ही प्रथम ईसाई धर्म प्रचारक सेंट थामस भारत आया था।

कुषाण वंश

कुषाण मध्य एशिया में चीनी सीमा के आस–पास रहने वाले यू–ची कबीले से संबंधित थे। चीनी ग्रथों से इनके बारे में काफी कुछ जानकारी मिलती है। चीनी सम्राट हुआंगती ने यू–ची जनजाति से रक्षा के लिए तीसरी सदी (लगभग 246 ई0पू0) में चीन की विशाल दीवार का निर्माण करवाया था। परिणामस्वरूप ये लोग भाग कर भारत की ओर आए।

- कुषाणों ने पहलव शासकों को पराजित कर काबुल और कश्मीर में अपनी सत्ता स्थापित की। कुजुल कडफिसस (30 ईस्वी 80 ईस्वी) के सिक्कों के एक तरफ अंतिम यूनानी शासक हरमोयस तथा दूसरी तरफ उसकी स्वंय की आकृति मिलती है।

- कुषाण वंश का सबसे प्रसिद्ध शासक कनिष्क था। मौर्य वंश की समाप्ति के बाद के काल का सबसे प्रसिद्ध शासक कनिष्क था। उसका साम्राज्य अफगानिस्तान, बैक्ट्रिया, पार्थिया (मध्य एशिया) से लेकर भारत में मगध तथा मध्य प्रदेस तक था।

- कनिष्क (78–144 ई0) की राजधानी पेशावर और मथुरा में थी। कनिष्क का चीन के राजा से भी युद्ध हुआ था। प्रथम लड़ाई में वह हार गया परंतु चीन के साथ द्वितीय युद्ध में वह जीत गया।

- कनिष्क के काल में ही बौद्धों की चौथी (संगीति) सभा कश्मीर में संपन्न हुई थी। उसके प्रयास से ही बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार चीन और मध्य एशिया में हुआ।
- कनिष्क के सिक्कों यूनानी और ईरानी भाषा में भी मिले हैं।
- कनिष्क के सिक्कों पर यूनानी, ईरानी एवं प्राकृतिक शक्तियों के चित्र मिलते हैं। जैसेः– हेराक्लीज, सूर्य और अग्नि आदि प्रमुख है।
- मथुरा से कनिष्क की एक ऐसी प्रतिमा मिली है, जिसमें उसे सैनिक वेश भूषा में दिखाया गया है।

गुप्त वंश

(240 ई0 – 570 ई0)

गुप्त राजवंश या गुप्त वंश प्राचीन भारत के प्रमुख राजवंशों में से एक था। गुप्त शासन काल को भारत का ''स्वर्ण युग'' माना जाता है। कुषाण साम्राज्य के घ्वंसावशेषों पर गुप्त साम्राज्य का उदय हुआ। संभवतः ये लोग कुषाणों के सामन्त थे और उनके बाद उनका स्थान ले लिया। गुप्त वंश का संस्थापक "श्रीगुप्त' था। समुद्रगुप्त ने स्वयं को **प्रयाग प्रशस्ति** (अभिलेख) लगभग 345 ई0 में श्रीगुप्त का प्रपौत्र कहा है। श्रीगुप्त ने गया में चीनी यात्रियों के लिए एक बौद्ध मंदिर बनवाया था, जिसका उल्लेख चीनी यात्री इत्सिंग ने किया था, जो सन् 671 से सन् 695 के बीच भारत आया था। सन् 320 में चन्द्रगुप्त प्रथम अपने पिता घटोत्कच के बाद राजा बने। गुप्त साम्राज्य की समृद्धि का युग यहीं से आरंभ होता है। चन्द्रगुप्त ने लिच्छवियों का सहयोग और समर्थन पाने के लिए उनकी राजकुमारी कुमारदेवी के साथ विवाह किया। इतिहासकार "स्मिथ' के अनुसार इस वैवाहिक सम्बन्ध के परिणामस्वरूप चन्द्रगुप्त प्रथम ने वैशाली राज्य प्राप्त किया। चन्द्रगुप्त ने जो सिक्के चलाए, उसमें चन्द्रगुप्त और कुमारदेवी के चित्र अंकित होते थे। लिच्छवियों के दूसरे राज्य नेपाल के क्षेत्र को उसके पुत्र समुद्रगुप्त ने अपने साम्राज्य में मिला लिया।

चन्द्रगुप्त प्रथम के बाद 335 ई0 में उसका तथा कुमारदेवी का पुत्र समुद्रगुप्त राजसिंहासन पर बैठा। समुद्रगुप्त का जन्म लिच्छवि राजकुमारी कुमारदेवी के गर्भ से हुआ था। समुद्रगुप्त के बाद रामगुप्त सम्राट बना। पुराणों में कहा गया है कि आरंभिक गुप्त राजाओं का साम्राज्य गंगा द्रोणी, प्रयाग, साकेत (अयोध्या) तथा मगध तक फैला था। पुराणों तथा प्रयाग प्रशस्ति (अभिलेख इलाहाबाद) से समुद्रगुप्त के राज्य के विस्तार के विषय में जानकारी मिलती है।

इससे साफ जाहिर होता है कि पुराण जैसे ग्रंथों की रचना या लेखन गुप्त काल के बाद हुई थी। ब्राह्मणवादियों और रूढ़िवादियों के द्वारा पुराण और स्मृति ग्रन्थों के बारे में सनातन या स्वतः उत्पत्ति या ब्रह्मा और मनु द्वारा रचित कहना, सिर्फ काल्पनिक और झूठी कहानी मात्र है।

आज भारत के अंदर जितने भी ऐतिहासिक लेखक और कथाकार हुए हैं सबों ने अपनी कलम के शक्ति का बेजा इस्तेमाल करते हुए सदियों यानि अनादि काल या लाखों वर्ष पुराने समय के राजा–महाराजा का सचित्र वर्णन करना और उस राजा–रानी की सुन्दर फोटो का वर्णन करना नहीं भूलते हैं। लेकिन शायद आप लोगों को ये पता नहीं होगा कि गुप्त वंश के समय को ''स्वर्ण काल'' बोला जाता है परन्तु इस समय के एक भी राजा–रानी का सचित्र फोटो आज तक हमलोगों के बीच में उपलब्ध नहीं है और इस समय के जितने राजा–रानी हुए हैं उन सबों के मत और विचार को लेकर लेखक या कथाकार एकमत भी नहीं है। अब आप इसी से अंदाजा लगा लीजिये कि 1000–2000 साल के सच्चे और प्रामाणिक तथ्य होने के बाद भी लेखक और पुरातत्व विभाग के पास उस समय के राजा–रानी के फोटों की अनुपलभ्ता और विचारों में मतभिन्नता है, तब सदियों और लाखों वर्षों की श्रुति–स्मृति कहानी पर (फोटो और विचारों) कितनी मतभिन्नता होगी? ये सिर्फ और सिर्फ काल्पनिक कहानियों का सचित्र वर्णन कर ब्राह्मणवादियों और मनुवादियों द्वारा भारतीय समाज को मानसिक गुलाम बनाने का तरीका था। ये सिर्फ 1000 साल के समय में ब्राह्मणवादियों और मनुवादियों की खेल का परिणाम है, जो अपनी शिक्षा का दुरूपयोग करते

हुए उस समय के राजा की शक्ति और धन के ताकत की बदौलत समाज के दिलों–दिमाग पर अनुचित तरीके से मनु और ब्राह्मण की काल्पनिक कहानियों को बैठा दिया है, जिसकी सच्ची जानकारी अब धीरे–धीरे उजागर हो रही है।

श्रीगुप्त – गुप्त वंश के संस्थापक

समय – 280 ईस्वी से 280 ईस्वी

धर्म – बौद्ध

भाषा – प्राकृत, पाली

राजधानी – पाटलिपुत्र (मगध)

उत्तराधिकारी – घटोत्कच (240 ई0 – 320 ई0)

उत्तराधिकारी – चन्द्रगुप्त (320 ई0 – 335 ई0)

धर्म – बौद्ध

उत्तराधिकारी – समुद्रगुप्त (335 ई0 – 375 ई0)

धर्म – बौद्ध

उत्तराधिकारी – रामगुप्त

समुद्रगुप्त के तत्काल उत्तराधिकारी बड़े बेटे रामगुप्त थे। इनके बाद इनका छोटा भाई चन्द्रगुप्त–II (चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य) उत्तराधिकारी बना। प्रारंभ में वह केवल पारंपरिक आख्यान से जाने जाते थे, लेकिन बाद में रामगुप्त ने कुछ मूर्तियों का निर्माण भी करवाया, जो खुदाई में विदिशा के पास से दुर्जनपुर में मिला है। विदिशा क्षेत्र के पास से रामगुप्त के नाम वाले तांबे के सिक्के भी बड़ी संख्या में खोज की गई है।

उत्तराधिकारी – चन्द्रगुप्त II (विक्रमादित्य)

(This king has also been known as the Vikramaditya)

राजधानी – पाटलिपुत्र

समय – 375 ईस्वी से 415 ईस्वी

धर्म – बौद्ध

भाषा – प्राकृत,पाली

युगपुरुष :– महाकवि कालिदास

महाकवि कालिदास

आज के ब्राह्मणी इतिहासकार कहते है कि “कालिदास' सम्राट चंद्रगुप्त द्वितीय उर्फ विक्रमादित्य के दरवार मे “महाकवि' थे। महाकवि कालिदास ने अपनी रचना “मेघदूत' में उज्जैन की चर्चा करते हुए प्रसिद्द “महाकाल' मंदिर की प्रशंसा किये है। जिसपर सवाल उठता है कि आज जहाँ महाकाल मंदिर अवस्थित है, वह स्थल सम्राट विक्रमादित्य द्वारा स्थापित खगोलीय ज्ञान हेतु वेधशाला वाली है, फिर महाकवि कालिदास सम्राट के दरबार में रहते हुए उस महाकाल मंदिर की प्रशंसा कैसे लिख दिए? क्योकि सम्राट विक्रमादित्य के अभिलेख में चर्चा है कि खगोलीय वेधशाला उज्जैन नगरी में थी। आज भी महाकाल मंदिर के दरवाजे पर “वेधशाला' अंकित है, आखिर ऐसा क्यों? ऐसे आप को बता दूँ कि इस महाकाल मंदिर की चर्चा महाभारत और पुराण में भी है, अब आप स्वयं तय कर लें कि खगोलीय वेधशाला पहले की है या महाभारत और पुराण पहले की है या महाकाल भैरव मंदिर?

दूसरी बात महाकवि कालिदास संस्कृत भाषा और देवनागरी लिपि में अनेक काव्य लिखे हैं, जिनमें संस्कृत के विद्वानों में यह श्लोक काफी प्रसिद्ध भी है–

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम्।।

इसका अर्थ है – काव्य के जितने भी प्रकार हैं उनमें नाटक विशेष सुन्दर होता है। नाटकों में भी काव्य–सौन्दर्य की दृष्टि से “अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का नाम सबसे ऊपर है। महाकवि कालिदास अपने नाटक के पटकथा में स्वयं संस्कृत में वार्तालाप करतें हैं और शेष पात्र पाली में वार्तालाप करतें हैं, भाई दोनो का अनुवादक कौन था?

चंद्रगुप्त द्वितीय उर्फ विक्रमादित्य के काल में सिर्फ पाली भाषा थी जिसका साक्ष्य प्रचुर मात्रा में मिलता है, लेकिन उस समय का कोई भी संस्कृत का शिलालेख प्राप्त नहीं हुआ है। आखिर इतनी भिन्नता और भ्रम क्यों फैलाया जा रहा है!

चन्द्रगुप्त–II उर्फ चक्रवर्ती सम्राट "विक्रमादित्य' अपने समय के बहुत ही प्रतापी राजा थे। विशेष रूप से चन्द्रगुप्त–II के शासनकाल के दौरान या इस अवधि में भारत शास्त्रीय ऊँचाई के शिखर पर पहुँच गया था। गुप्त वंश के इस राजा चन्द्रगुप्त–II की प्रसिद्धि उस काल में कवियों और कई खगोलविदों के वजह से भी थी। इसलिए आज के इतिहासकार बाद के हुए कवि को भी उनके साथ जोड़कर दिखाने का काम किया है। इन्होंने ही भारत में सबसे सटिक पंचांग "**विक्रम सम्वत्**' अपने नाम पर आरंभ करवाया था, जो आज भी हम सबों के बीच में उपस्थित है। प्राचीन भारत में गणित और खगोल विज्ञान के स्कूल के बारे में वर्णन (Joseph, 2000) में देखा जा सकता है, जिसकी चर्चा आगे मिलेगी।

उत्तराधिकारी – कुमारगुप्त
राजधानी – पाटलिपुत्र
समय – 415 ईस्वी से 455 ईस्वी
धर्म – बौद्ध
भाषा – प्राकृत,पाली
उत्तराधिकारी – स्कन्दगुप्त
समय – 455 ई0 से 467 ईस्वी
धर्म – बौद्ध
उत्तराधिकारी – पुरूगुप्त
समय – 467 ईस्वी से 473 ईस्वी
धर्म – बौद्ध
भाषा – प्राकृत,पाली
उत्तराधिकारी – कुमारगुप्त–II
समय – 473 ईस्वी से 476 ईस्वी
राजधानी – पाटलिपुत्र
धर्म – बौद्ध
उत्तराधिकारी – बुधगुप्त
समय – 476 ईस्वी से 495 ईस्वी

राजधानी – पाटलिपुत्र
धर्म – बौद्ध
भाषा – प्राकृत,पाली
युगपुरूष – चरक और सुश्रुत (दवा और चिकित्सा)
उत्तराधिकारी – नरसिंहगुप्त
समय – 495 ईस्वी या 500 ईस्वी से आगे

1. नरसिंहगुप्त ने अपने नाम के साथ ''बालादित्य' उपाधि प्रयुक्त की थी।
2. उनके सिक्कों पर एक तरफ उनका चित्र है और 'नर' लिखा है, दूसरी तरफ 'बालादित्य' लिखा गया है।
3. नरसिंहगुप्त बौद्ध धर्म का कट्टर अनुयायी था।
4. उन्होंने नालन्दा में, जो उत्तरी भारत में बौद्ध शिक्षा का विश्वविख्यात केन्द्र था, उसमें ईंटों का एक भव्य बौद्ध मन्दिर बनवाया, जिसमें सिर्फ भगवान बुद्ध की मूर्ति स्थापित थी।
5. इस मन्दिर में 80 फुट ऊँची बुद्ध की ताम्र प्रतिमा की स्थापना की गई थी।
6. इस नालन्दा विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिए विश्व के कोने–कोने से विद्यार्थी आते थे जो यहाँ से ज्ञान के साथ–साथ बौद्ध धर्म को भी अपने देश में वापस लेकर लौटें।
7. बिहार के नालंदा विश्वविद्यालय को यूनेस्को ने वर्ल्ड हेरिटेज साइट में शामिल किया है।

बेचारा यूनेस्को को जो आप बताएगें, वही तो वह अपने वेब–साइड पर लिखेगा। आपने उसे बताया कि नालंदा विश्वविद्यालय की स्थापना गुप्तवंश के शासक कुमारगुप्त ने (415–455) पाँचवीं शताब्दी में की थी, यही बात यूनेस्को ने लिखी। भाई, नालंदा विश्वविद्यालय के विद्यार्थी नागार्जुन थे और नागार्जुन जब वहाँ पढ़ते थे, तब कुमारगुप्त का जन्म भी नहीं हुआ था। नागार्जुन का काल 50 ई0 से 150 ई0 रहा है। फिर कुमारगुप्त ने पाचवीं शताब्दी में कैसे स्थापित कर दिया नालंदा विश्वविद्यालय?

उत्तराधिकारी – भानुगुप्त (510 ईस्वी), कुमारगुप्त तृतीय, दामोदरगुप्त आदि
समय – 500 ईस्वी – 570 ईस्वी

विष्णुगुप्त – गुप्त वंश के कम ज्ञात राजाओं में से एक थे। विष्णुगुप्त को गुप्त साम्राज्य का अंतिम मान्यता प्राप्त राजा माना जाता है। उनका शासनकाल 10 साल तक चला। नालंदा में 1927–28 की खुदाई के दौरान मिट्टी के सील के टुकड़ों से पता चला कि ये विष्णुगुप्त थे और ये कुमारगुप्त–III के बेटे और नरसिंहगुप्त ''बालादित्य' के पोता थे।

हर्षवर्धन वंश

हर्षवर्धन वंश समय – 606 ईस्वी – 647 ईस्वी

राजधानी – कन्नौज

धर्म – बौद्ध

भाषा – प्राकृत, पाली

चीनी यात्री ह्वेनसांग

युगपुरुष :– ब्रहम गुप्त (गणितज्ञ)

ह्वेनसांग

प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग राजा हर्षवर्द्धन (606 ई0– 647 ई0) के शासन काल में भारत आया था। वह भारत में 17 वर्षों तक रहा। उसने तत्कालीन भारतीय समाज का अच्छा वर्णन किया है। उसके अनुसार सारे भारत में बौद्ध धर्म फैला हुआ था। उसने स्वात घाटी (वर्तमान पाकिस्तान) में 1400 बौद्ध मठ देखे थे, जिसमें 18 हजार भिक्षु रहते थे। तक्षशिला एक बौद्ध राज्य था जो काश्मीर के अधीन था। ह्वेनसांग ने हर्षवर्द्धन की राजधानी कन्नौज में 100 मठ और 10 हजार बौद्ध भिक्षु देखे। हर्षवर्द्धन बौद्ध धर्म का संरक्षक था। दक्षिण भारत में कांची (पल्लव शासकों की राजधानी) बौद्ध धर्म का शक्ति केन्द्र था। वह दो वर्ष तक नालन्दा में रहा।

उसने सन् 646 में महान तांग वंश के समय में 'पश्चिम की यात्रा' नाम से चीनी भाषा में पुस्तक लिखा जिसका 1857 में फ्रेंच में अनुवाद स्टैनिस्लैस जूलियन द्वारा किया गया। उसके बाद उसका अंग्रेजी अनुवाद हुआ।

उसने यहाँ के लोगों के बारे में कहा कि यहाँ के लोग आरामतलबी और सौहार्दपूर्ण व्यवहार वाले होते हैं। यहाँ पर्दा प्रथा नहीं थी। महिलाओं को शिक्षा दी जाती थी। सामान्य लोग मांस, प्याज और शराब का प्रयोग नहीं करते थे।

दक्षिण भारत का इतिहास

दक्षिण भारत के आरंभिक ऐतिहासिक काल को संगम काल के नाम से जाना जाता है।

संगम काल – 300 ईस्वी पूर्व से 600 ईस्वी तक अर्थात 900 वर्षों तक कायम रहा।

संगम काल में तीन प्रमुख राजवंश थे – चेर, चोल एवं पाण्ड्य राजवंश। तमिल में संगम का अर्थ है, संघ अथवा सम्मेलन। संगम तत्कालीन विद्वानों की गोष्ठी थी।

चेर राजवंश – यह दक्षिण भारत का सबसे प्राचीन राजवंश था। अशोक के शिलालेख में "केरलपुत्र' राज्य का उल्लेख है। "केरलपुत्र' राज्य ही चेर राज्य था। इसका भौगोलिक विस्तार मालाबार का तटीय क्षेत्र, उत्तरी त्रावणकोर एवं कोचीन तक था। इसकी राजधानी वंजी थी।

पाण्ड्य राजवंश – इस राज्य का सर्वप्रथम उल्लेख मेगास्थनीज ने (324 ई0 पू0) किया था। पाण्ड्य राज्य प्रायद्वीप के सुदूर दक्षिण और दक्षिण–पूर्वी भाग में था और उसमें मोटे तौर पर तमिलनाडु के कुछ जिले शामिल थे। इसकी राजधानी मदुरै थी। इस वंश के शासक नेडुजेलियन (210 ई0) ने रोम के सम्राट "आगस्टस' के दरबार में एक राजदूत भेजा था।

चोल राजवंश – चोल वंश का भौगोलिक विस्तार आधुनिक कावेरी नदी घाटी, कोरोमंडल, त्रिचिरापल्ली एवं तंजौर के क्षेत्र तक था। इसकी राजधानी क्रमशः उत्तरी मनलूर, उरैयूर तथा बाद में तंजाबुर बनी। चोल राज्य का उल्लेख अशोक के अभिलेख में भी हुआ है। लगभग 150 ई0 पूर्व के आस–पास एलारा नामक चोल राजा ने श्रीलंका पर लगभग 50 वर्षों तक शासन किया।

आरंभिक चोल वंश लगभग 300 ई0 तक रहा। उसके बाद उनका साम्राज्य नष्ट हो गया। पुनः 800 ई0 के बाद परवर्ती चोल वंश के शासकों ने लगभग 500–600 वर्षों तक शासन किया।

चोल राजवंश

300 ईसा पूर्व – 1279 ईस्वी

धर्म – बुद्ध, शैव

राजधानी – पुहार, उरयुर, तिरूवरूर, थन्जावुर, गंगईकोंड चोलपुरम

भाषा – प्राचीन तमिल

चोल राजवंश को ''चोल मंडल'' भी कहा जाता है। चोल राजवंश दक्षिणी भारत के इतिहास में सबसे लंबे समय तक सत्तारूढ़ राजवंशों में से एक था। इस तमिल क्षेत्र को मौर्य शासक सम्राट अशोक ने एकीकृत भारत का रूप देते हुए अपने साम्राज्य में मिला लिया था। उसके बाद दक्षिण भारत के लिए 200 ईस्वी से 848 ईस्वी तक का समय अराजक समय के रूप में याद किया जाता है।

परवर्ती चोल वंश – परवर्ती चोल वंश का संस्थापक विजयालय चोल था। इसका शासन काल 848 ईस्वी से 891 ईस्वी तक था। इस वंश का महत्वपूर्ण शासक राजराजा चोल (985 ईस्वी से 1014 ईस्वी) था। उसका उत्तराधिकारी राजेन्द्र चोल प्रथम (1014से 1044 ईस्वी) इस वंश का सबसे प्रसिद्ध शासक था। इसने उत्तर भारत तथा श्रीलंका दोनों पर विजय प्राप्त की थी।

दक्षिण भारतीय राज्यों की प्रमुख विशेषताएँ

शासन काल (9वीं सदी से 14वीं सदी के मध्य)।

राजा को ईश्वर का अवतार माना जाता था।

वर्त्तमान काल में जिस आधुनिक ग्राम स्वशासन एवं स्थानीय शासन की परंपरा को अपने देश में देखते हैं, उसका आरंभ परवर्ती चोल शासकों के काल में हुआ था। यद्यपि इसके बीज छठी शताब्दी ई0 पू0 में यानी कि बौद्ध काल में गणराज्यों के प्रशासन में निहित है। चोल शासन काल में सशस्त्र महिलाएँ राजा की अंगरक्षक होती थीं।

मृत योद्धाओं के सम्मान में स्मृति पत्थर लगाकर उनकी पूजा की जाती थी।

पाण्ड्य शासक रोम के सैनिकों को अपना अंगरक्षक नियुक्त करते थे और उन्हें ''मूक मलेच्छ'' कहा जाता था।

चोल काल में यवन व्यापारी (रोमन) अपने जहाजों में सोना भरकर भारत आते थे और यहाँ से सोना के बदले काली मिर्च और मसाले ले जाते थे।

उस समय विदेशी व्यापार अरब, चीन, मिस्र, प्रायद्वीप एवं रोम तथा इटली से होता था।

उत्तर भारतीय प्रभाव के कारण वहाँ वैदिक कर्मकांड का विस्तार हुआ। दक्षिण में उत्तर भारत की तरह चातुर्वर्ण व्यवस्था स्थापित नहीं थी। उनका समाज पाँच वर्गों में विभक्त था। (1) ब्राह्मण वर्ग (2) अरसर (राज परिवार से जुड़े शासक) (3) वणिक वर्ग (5) बल्लाल (बड़े कृषक एवं भू–शासक वर्ग) (5) वेल्लार (मजदूर कृषक वर्ग)।

पाल वंश

समय – 750 ईस्वी (मुख्य रूप से 810 ईस्वी से स्थापित)

भाषा – पाली

धर्म – बौद्ध

ऐतिहासिक – शास्त्रीय भारत का निर्माण करवाना, जिसके लिए

शिक्षण संस्थान – विक्रमशिला विश्वविद्यालय की स्थापना लगभग 850 ईस्वी में की गयी थी। इसमें पढ़ने वाले विद्यार्थी और पढ़ाने वाले शिक्षकों के पूजा ध्यान हेतु सिर्फ भगवान बुद्ध की प्रतिमा स्थापित थी। यानि इस समय तक भारत के अन्दर सिर्फ भगवान बुद्ध की ही पूजा ध्यान की जाती थी।

विक्रमशिला विश्वविद्यालय की स्थापना हो जाने के बाद से भारत के इतिहास में सामाजिक परिवर्तन एवं विषमता का अध्याय आरंभ हो गया और इसको ध्यान से देखने पर आप या हर कोई बहुत ही अच्छे प्रकार से अनुभव

कर सकता है। इसके पहले भारत में जितने भी शासक हुए हैं, उनके समय में किसी भी प्रकार की वर्ण व्यवस्था या जाति व्यवस्था की चर्चा नहीं मिलती है। पाल वंश के द्वारा स्थापित विक्रमशिला विश्वविद्यालय में पढ़ाने वाले और पढ़ने वाले लोगों के द्वारा ही भारतीय समाज में असहनीय परिवर्तन का काम शुरू किया गया था, अब पहले वाले उस "स्वर्ण काल के भारत' को "नर्क काल का भारत' में बदलने का काम शुरु हो गया। इतना ही नहीं इस समय के नारकीय बदलाव को सदियों पुराना परिवर्तन बताकर समाज को पूर्णरूपेण दिग्भ्रमित करने का काम किया गया और अब भी किया जा रहा है। इसके पहले के भारत को "स्वर्ण काल का भारत' बोला जाता था, और उस स्वर्ण काल के भारत के अंदर किसी भी प्रकार की सामाजिक विभक्ति या छुआ–छूत नहीं थी। अगर कुछ मिलता भी था तो वह था **"वर्ग विभक्ति',** जिसमें सिर्फ अमीर वर्ग और गरीब वर्ग होता था, जो तरल होता था यानि आज का अमीर कल का गरीब हो सकता है और कल का गरीब आज का अमीर, और कर्म के अनुसार जाति वर्ग भी बदलते रहते थे। लेकिन पाल वंश के बाद से भारत में जो जातीय विभक्ति, वर्ण विभक्ति या कर्म विभक्ति का मिलना शुरू हुआ है, वो ठोस रुप में है यानि अप्रवर्तनिय होकर जन्म–जन्मान्तर के साथ **"वर्ण विभक्ति'** वर्ण और जाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र) के रुप में चिपक गया है। यानि ब्राह्मण अगर सेवा (नौकरी) का काम करे तो भी वह शूद्र नहीं होगा और शूद्र अगर ज्ञानी भी हो जाये तो वह ब्राह्मण नहीं हो सकता। जबकि इसके पूर्व काल में इसके विपरित व्यवस्था थी। ये सभी इसी पाल वंश के द्वारा स्थापित विक्रमशिला विश्वविद्यालय के छद्म बुद्धिजीवियों के द्वारा आरंभ किया गया, जिसे आप इसके आगे के अध्याय का अध्ययन कर अनुभव कर सकते हैं।

इसके पहले सिर्फ और सिर्फ वंश और वर्ग मिलता है। जाति का उदय या जाति सूचक नाम यहीं से मिलना शुरू होता है।

❖ विक्रमशिला विश्वविद्यालय में पढ़ाने वाले शिक्षकों और पढ़ने वाले विद्यार्थियों को एक उंपाधि मिलती थी, जो आज भी संस्कृत पढ़ने पर उपाधि के रूप में मिलती हैं।

- ❖ ये सारी उपाधियाँ आज भी दिखेंगी, लेकिन अब जाति सूचक और पुस्तैनी हो गई है।
- ❖ शिक्षक – आचार्य, उपाध्याय, मुखोपाध्याय ....
- ❖ कुशाग्र विद्यार्थी – पंडित, महापंडित ....
- ❖ ग्रन्थ वाचक – मिश्रा, मुखर्जी, शर्मा .....
- ❖ दो वेद के विद्यार्थी – दुबे, द्विवेदी ......
- ❖ तीन वेद के विद्यार्थी – त्रिवेदी, तिवारी, त्रिपाठी .....
- ❖ चार वेद के विद्यार्थी – चौबे, चतुर्वेदी, चटोपाध्याय ....
- ❖ ये उपाधियाँ वे हैं, जो बाद में उपाधि (सरनेम) और जाति (पंडित) के रूप में स्थापित होती चली गयी और वो आज भी दिख रही है। ये सारे उपाधि (सरनेम) यहीं से आरंभ हुए।
- ❖ यहाँ शिक्षा ग्रहण करने लिए तत्कालीन समाज के प्रत्येक (ब्राह्मणी मतानुसार) गोत्र, वंश के लोग जाते थे इसलिए जाति के अंदर सप्त ऋषि के सारे गोत्र विराजमान हैं।
- ❖ गोत्र – (1) गौतम (2) कश्यप (3) भारद्वाज (4) विश्वामित्र (5) जमदग्नि (6) वशिष्ठ (7) अत्रि। बाद में कुछ ऋषि–मुनियों को जोड़कर गोत्र की संख्या को आगे बढ़ाया गया, जिससे (8) कौशिक ऋषि (9) वत्स ऋषि (10) कौंडिन्य ऋषि (11) अगस्त ऋषि और जुड़ गये।
- ❖ बाद के समय में इन पंडितों ने राजपूतों के दरबार में सलाहकार का काम किया और अपने स्वार्थ हेतु प्रत्येक राजा को एक–दूसरे से लड़ाकर मुस्लिम आक्रमणकारियों को मौका दिया। तुर्क मुस्लिम शासकों के आने के बाद पंडित और राजपूत दोनों ने ही मुस्लिम शासकों के दरबार में दरबारी का काम किया।
- ❖ पाल वंश के समय काम के अनुसार पद का नामकरण हुआ जो नीचे है :–
  The Pala rule was monarchial. The king was the centre of all power. Pala kings would adopt imperial titles like Parameshwara, Paramvattaraka, Maharajjadhiraja, Rajput. Pala kings appointed Prime Ministers. (Pramode Lal Paul (1939). The Early History of Bengal. Indian History. Indian Research Institute).

- ये सारे पद आज भी विद्यमान हैं, लेकिन अब सिर्फ जाति सूचक और पुस्तैनी हो गया है।
- राजा–राजनायका (Raja-Rajnayaka) परमेश्वर, परमभट्टारक, महाराजधिराज (राजपूत जाति का उदय यहाँ से)।
- रानका (Ranaka) (संभवतः अधीनस्थ प्रमुखों की उपाधि)
- सामंत और महासामंत Samanta and Mahasamanta (अधीनस्थ क्षेत्रीय प्रधान)।
- महासन्धि–विग्रहिक (mahasandhi-Vigrahika) (विदेश मंत्री)।
- दत (Duta) (प्रमुख राजदूत)। (दत या दत्ता की उपाधि का उदय यहीं से शुरु हुआ, जो अब ब्राह्मण जाति का सरनेम है)।
- राजस्थानिए (Rajasthaniya) (उप) प्रान्तों के राज्यपाल।
- अग्रक्षा (Aggaraksa) (प्रधान रक्षक)।
- शास्थाधिकर्त्ता (Sasthadhikarta) (टैक्स कलेक्टर)।
- चौरोधारनिका (Chauroddharanika) (पुलिस)।
- शौल्काका (Shaulkaka) (व्यापार कर)।
- दशपराधिका (Dashaparadhika) (दण्डाधिकारी)।
- तारिका (Tarika) (नदी पार करने पर शुल्क संग्रहकर्त्ता) (निषाद या मल्लाह जाति का उदय यहाँ से)।
- महाअक्षपटलिका (Mahaksapatalika) (महालेखाकार)।
- ज्येष्ठकायस्था (Jyesthakayastha) (दस्तावेजों का लेनदेन करने वाला)। (कायस्थ जाति का उदय यहाँ से)।
- प्रमात्र (Pramatr) (भूमि मापन के प्रमुख)।
- महादण्डनायक (Mahadandanayaka) या धर्माधिकारी (Dharmadhikari) (प्रधान दण्डाधिकारी)।

- ❖ दण्डशक्ति (Dandashakti) (पुलिस कर्मचारी)।
- ❖ खोला (Khola) (गुप्त सेवा)।
- ❖ क्षेत्रप (Kshetrapa) (भूमि के उपयोग प्रभाग के प्रमुख अधिकारी)।
- ❖ कृषकाध्यक्ष (Krishakadhyaksha) (कृषि के प्रमुख अधिकारी)। (कृषककर्मी–जाति का उदय यहाँ से) (''अन्न'' कुर्मी/गूजर, ''सब्जी'' कोयरी, ''फूल'' माली) ।
- ❖ गवाध्यक्ष (Gavadhakshya) (डेयरी फार्मों के प्रमुख) (ग्वाला जाति का उदय यहाँ से)।
- ❖ छागाध्यक्ष (Chhagadyakshya) (बकरी पालन के प्रमुख)।
- ❖ मेषाध्यक्ष (Meshadyakshya) (भेड़ पालन के प्रमुख) (गड़ेरिया जाति का उदय यहाँ से)।
- ❖ महिषाध्यक्ष (Mahishadyakshya) (भैंस पालन के प्रमुख) और
- ❖ वोग्पति (Vogpati)
- ❖ जैसे कई अन्य नाम

  (आधार –Pramode Lal Paul (1939). The Early History of Bengal (PDF). Indian History. Indian Research Institute. Retrieved 2014-03-28. e Pramode Lal Paul (1939). The Early History of Bengal (PDF). Indian History. Indian Research Institute. Retrieved 2014-03-28. और अन्य लेखकों की पाल वंश की जीवनी)।

- ❖ बख्तियार खिलजी द्वारा लगभग 1200 ईस्वी में "विक्रमशिला विश्वविद्यालय' को नष्ट करवा दिया गया।

पाल वंश के शासक

- ❖ गोपाल –750 ईस्वी – 770 ईस्वी (संस्थापक)
- ❖ राजधानी–मुंगेर (मुद्गिरि)

धर्मपाल – 770 ईस्वी – 810 ईस्वी (वास्तविक संस्थापक)

देवपाल – 810 ईस्वी – 850 ईस्वी (सबसे प्रसिद्ध)

- ❖ इन्हीं दो शासकों के समय में शास्त्रीय भारत का निर्माण करने हेतु विक्रमशिला विश्वविद्यालय की स्थापना की गई थी, जो आगे चलकर यहाँ के पढ़ने वाले और पढ़ाने वाले लोगों के वंशजों द्वारा शास्त्रीय भारत की जगह पर नारकीय भारत का निर्माण कर दिया गया।

इस वंश के अन्य शासक (850–988 ई0) शुरपाल, विग्रहपाल, नारायणपाल, राज्यपाल, गोपाल–II, विग्रहपाल–II, महिपाल–I आदि थें। अंतिम शासक–गोविंदपाल(1165 ईस्वी)।

(आधार पाल वंश की जीवनी)

राजपूतों का उदय

राजपूत शब्द संस्कृत के ''राजपुत्र' और पाली के ''राजा के पुत्त' का अपभ्रंश है। सामान्यतः इसका अर्थ होता है ''राजा का पुत्र' या राज परिवार के किसी व्यक्ति का ''पुत्र'। राजपुत्र शब्द का प्रयोग संभवतः (पाल वंश) 800 ईस्वी के बाद किसी जाति के रूप में न करके राज परिवार के सदस्यों के लिए किया जाता था। बाद में इस राजपूत या राजपुत्र शब्द का प्रयोग जाति के रूप में होने लगा और उसके बाद भारत में छोटे–छोटे राज्यों का उदय हुआ और एक–दूसरे से बड़ा बनने की होड़ में राजशाही का उदय हुआ, साथ ही अपने आपको राजपूत कहलाने के अहंकार की परंपरा की शुरूआत भी हुई।

जैसेः–

- ❖ राजपूत राजा – कन्नौज में गहड़वाल (1080 ई0), गुजरात में सोलंकी, मालवा में परमार, ग्वालियर में तोमर (10वीं सदी) और अजमेर में चौहान(12वीं सदी)।
- ❖ बुंदेलखंड का चंदेल वंश – 900 ई0 से 1250 ईस्वी। राज्यक्षेत्र – उड़ीसा और मध्य प्रदेश।
- ❖ 950 ईस्वी के बाद से ही भारत के हर राजाओं के अंदर झूठी आन–बान–शान की वजह से आपस में तू–तू मैं–मैं और झूठे घमंड की वजह से हर राजा एक दूसरे को नीचा दिखाने, मरने और मारने हेतु तुर्क मुसलमानों को बुलाने लगा, जिसकी वजह से भारत में तुर्क मुसलमानों का आना शुरू ....।

❖ अजमेर का चौहान वंश – 12वीं सदी, क्षेत्र–राजस्थान और पंजाब, दो राजधानी – पिथौरागढ़ (दिल्ली) और अजमेर। पृथ्वीराज चौहान तृतीय को 1192 में मोहम्मद गौरी ने हराया।

❖ मेवाड़ का राणा – 1320 ईस्वी चित्तौड़ का राजा – राणा रतन सिंह का अलाउद्दीन खिलजी के हाथों अंत।

कड़वा सच – 570 ईस्वी में पैगम्बर हजरत मोहम्मद का जन्म और उनके द्वारा मुस्लिम धर्म की स्थापना और आज पूरे विश्व के नक्शे पर छा जाना (यानी कि गुप्त वंश शासन के बाद) और 950 ईस्वी में पाल वंश के समय शास्त्रीय भारत का निर्माण करने हेतु विक्रमशिला विश्वविद्यालय की स्थापना करना और उस विश्वविद्यालय से शिक्षित वर्ग का पैदा लेना और उसी शिक्षित वर्ग (ब्राह्मण) के कारण ब्राह्मणवादी व्यवस्था और राजपुत्र या राजपूत राजा की उत्पत्ति होना और उसके मात्र 300 से 400 वर्षों के अंदर हर राजपूत राजा ब्राह्मणों का गुलाम बनकर रह गया। यह परिवर्त्तन ब्राह्मणों की गुलाम बनाने वाली प्रक्रिया को दर्शाता है, जो आज भी ब्राह्मण समाज की विचारधारा में स्पष्ट परिलक्षित होता है।

महमूद गजनवी

महमूद गजनवी (971–1030 ईस्वी) मध्य अफगानिस्तान में केन्द्रित गजनवी वंश का एक महत्वपूर्ण शासक था, जो पूर्वी ईरानी भूमि में साम्राज्य विस्तार के लिए जाना जाता है। वह तुर्क मूल का था और अपने समकालीन (और बाद के) सल्जक तुर्कों की तरह पूर्व में एक सुन्नी इस्लामी साम्राज्य बनाने में सफल हुआ। उसके द्वारा जीते गए प्रदेशों में आज का पूर्वी ईरान, अफगानिस्तान और संलग्न मध्य–एशिया (सम्मिलित रूप से खोरासान) , पाकिस्तान और उत्तर–पश्चिमी भारत शामिल था। उसके युद्धों में फातिमी सुल्तानों (शिया), काबुल के शाहिया राजाओं और कश्मीर का नाम प्रमुखता से आता है। भारत में इस्लामी शासन लाने और आक्रमण के दौरान लुटपाट मचाने के कारण भारतीय हिन्दू समाज में उसको एक लुटेरे आक्रांता के रूप में जाना जाता है। लेकिन सोमनाथ मन्दिर के पुजारी और गजनवी की मिली–भगत से इस मंदिर को लूटना (1024ई0) इस कड़ी की एक महत्वपूर्ण घटना थी। गजनवी ने भारत पर धन हेतु 17 बार आक्रमण किया था।

मोहम्मद गौरी

शहाब–उद–दीन मुहम्मद गौरी 12वीं शताब्दी का अफगानी सेनापति था, जो 1202 ई0 में गोर साम्राज्य का शासक बना। इसने भारत पर सात बार आक्रमण किया। सेनापति के रुप में उसने अपने भाई गियास–उद–दीन गौरी (जो उस समय सुल्तान था) के लिए भारतीय उप महाद्वीप पर गौरी साम्राज्य का बहुत विस्तार किया और उसका पहला आक्रमण मुल्तान (1175 ई0) पर था। पाटन (गुजरात) के शासक भीम द्वितीय पर मोहम्मद गौरी ने 1178 ई0 में आक्रमण किया किन्तु मोहम्मद गौरी बुरी तरह पराजित हुआ। मोहम्मद गौरी और पृथ्वीराज चौहान के बीच तराईन के मैदान में दो युद्ध हुए। 1191 ई0 में हुए तराईन के प्रथम युद्ध में पृथ्वीराज चौहान की विजय हुई, किन्तु अगले ही वर्ष 1192 ई0 में पृथ्वीराज चौहान को तराईन के द्वितीय युद्ध में मोहम्मद गौरी ने बुरी तरह पराजित किया। मोहम्मद गौरी ने चंदावर के युद्ध (1194 ई0) में दिल्ली के गहड़वाल वंश के शासक जयचंद को पराजित किया। मोहम्मद गौरी ने भारत में विजित साम्राज्य का भार अपने सेनापतियों को सौंप दिया और वह गजनी चला गया। बाद में गौरी के गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक ने भारत में गुलाम वंश (दिल्ली सल्तनत) या प्रथम मुस्लिम राजवंश की नींव डाली।

कुतुबउद्दीन ऐबक (1206–1210ई0)

कुतुब अल दीन (या कुतुबुउद्दीन) तुर्किस्तान का निवासी था और उसके माता–पिता तुर्क थे। वह गौरी का एक योग्य गुलाम था। उसने गौरी के सहायक के रूप में कई क्षेत्रों पर सैन्य अभियान में हिस्सा लिया था तथा इन अभियानों में उसकी मुख्य भूमिका रही थी। इसी से खुश होकर गौरी ने कुतुबउद्दीन को इन क्षेत्रों का सूबेदार नियुक्त कर गया था। मुहम्मद गौरी द्वारा राजपूताना पर विजय के बाद राजपूतों की सत्ता को कुतुबउद्दीन को सौंपा था। कुतुबउद्दीन ने सर्वप्रथम, 1192 में अजमेर तथा मेरठ में विद्रोहों का दमन किया। दिल्ली के पास इन्द्रप्रस्थ को अपना केन्द्र बनाकर उसने भारत पर विजय की नीति अपनायी। भारत पर इससे पहले किसी भी मुस्लिम शासक का प्रभुत्व तथा शासन इतना नहीं टिका था। सन् 1194 में

अजमेर पर उसने दूसरे विद्रोह को दबाया और कन्नौज के शासक जयचन्द के साथ चन्दवार के युद्ध में अपने स्वामी का साथ दिया। 1195 ईस्वी में उसने कोइल (अलीगढ़) को जीत लिया। 1197 में उसने भीमदेव की राजधानी अन्हिलवाड़ा को लूटा और अकूत धन लेकर वापस लौटा। 1197–98 के बीच उसने कन्नौज, चन्दवार तथा बदायूँ पर कब्जा कर लिया। इसके बाद उसने सिरोही तथा मालवा के कुछ भागों पर अधिकार कर लिया। पर ये विजय चिरस्थायी नहीं रह सकी। इसी साल उसने बनारस पर आक्रमण कर दिया। 1202–03 में उसने चन्देल राजा परमर्दी देव को पराजित कर कालिंजर, महोबा और खजुराहो पर अधिकार कर अपनी स्थिति मजबूत कर ली। इसी समय गोर के सहायक सेनापति बख्तियार खिलजी ने बंगाल और बिहार पर अधिकार कर लिया। अपनी मृत्यु के पूर्व मोहम्मद गौरी ने अपने वारिस के बारे में कुछ ऐलान नहीं किया था। गौरी ने ऐबक को मलिक की उपाधि दिया था पर उसे सभी सरदारों का प्रमुख बनाने का निर्णय नहीं लिया था। ऐबक का गद्दी पर दावा कमजोर था, पर उसने विषम परिस्थितियों में कुशलता पूर्वक काम किया और अंततः दिल्ली की सत्ता का स्वामी बना। गौरी की मृत्यु के बाद 24 जून 1206 को कुतुबउद्दीन का राज्यारोहण हुआ, परन्तु उसने सुल्तान की उपाधि धारण नहीं की। कुतुबउद्दीन की मृत्यु 1210 में घोड़े से पोलो खेलते समय गिरकर एक दुर्घटना में हुई थी।

खिलजी वंश (1296–1320ई0)

मध्यकालीन भारत का एक मुस्लिम राजवंश था। जलालुद्दीन खिलजी (1296ई0) इस वंश का संस्थापक था। उसका भतीजा अलाउद्दीन खिलजी ने दक्कन के हिन्दू राज्यों पर चढ़ाई करके देवगिरी और उसके खजाने पर कब्जा कर लिया और फिर 1296 में वापस लौटकर उसने अपने चाचा की हत्या कर दी। अलाउद्दीन खिलजी ने 20 वर्षों तक शासन किया। उसने रणथंभौर (1301), चित्तौड़ (1303) और मांडू (1305) पर कब्जा किया और देवगिरी के समृद्ध हिन्दू राज्य को अपने राज्य में मिला लिया। अलाउद्दीन के सेनापति मलिक काफूर ने 1308 में दक्षिण भारत पर कब्जा कर लिया, कृष्णा नदी के दक्षिण में होयसल वंश को उखाड़ फेंका और सुदूर

दक्षिण में मदुरै पर अधिकार कर लिया। जब 1311 में मलिक काफूर दिल्ली लौटा, तो वह लूट के माल से लदा था। इसके बाद अलाउद्दीन के वंश का सितारा डूब गया। 1316 के आरंभ में सुल्तान की मृत्यु हो गयी। मलिक काफूर द्वारा सत्ता पर काबिज होने की कोशिश उसकी मृत्यु के साथ ही समाप्त हुआ। अंतिम खिलजी शासक कुतुबउद्दीन मुबारक शाह की उसके प्रधानमंत्री खुसरो खाँ ने 1320 में हत्या कर दी। खुसरो खाँ (भारतीय मुसलमान) कुछ महिनों के लिए गद्दी पर बैठा, परंतु बाद में तुगलक वंश के प्रथम शासक गयासुद्दीन तुगलक ने खुसरो खाँ से गद्दी छीन लिया।

तुगलक वंश (1320–1414 ई0)

गयासुद्दीन ने एक नये वंश अर्थात् तुगलक वंश की स्थापना की, जिसने 1412 तक दिल्ली पर राज किया। इस वंश में तीन प्रमुख शासक हुए। गयासुद्दीन, उसका पुत्र मुहम्मद बिन तुगलक (1324–1351) और उसका उत्तराधिकारी फिरोज शाह तुगलक (1351–87)। इनमें से मुहम्मद बिन तुगलक का अधिकार करीब–करीब पूरे देश पर था। फिरोज का साम्राज्य उनसे छोटा अवश्य था, पर फिर भी अलाउद्दीन खिलजी के साम्राज्य से छोटा नहीं था। फिरोज की मृत्यु के बाद दिल्ली सल्तनत का विघटन हो गया और उत्तरी भारत छोटे–छोटे राज्यों में बँट गया। यद्यपि तुगलक वंश 1412 तक शासन में रहा, तथापि 1398 में तैमूरलंग द्वारा दिल्ली पर आक्रमण के साथ ही तुगलक साम्राज्य का अंत माना जाना चाहिए। भारत में पहली बार सांकेतीक मुद्रा का प्रचलन मुहम्मद बिन तुगलक ने करवाया था, परंतु वह असफल हो गया। इसके तहत चांदी के 'टंका' और सोने की 'मुहर' के स्थान पर प्रतीक के रूप में केवल छोटे–छोटे तांबे के सिक्के जारी किए गए थे।

सैयद वंश (1414–1451 ई0)

सैयद वंश का संस्थापक खिज्र खाँ था। इसके तहत चांदी के 'टंका' और सोने की 'मुहर' के स्थान पर प्रतीक के रूप में केवल छोटे–छोटे तांबे के सिक्के जारी किए गए थें।

लोदी वंश (1451–1526 ई0)

दिल्ली में पहली बार अफगान राज्य की स्थापना बहलोल लोदी के नेतृत्व में 1451 ई0 में हुई। वह सैन्य सरदारों के साथ समानता का व्यवहार करता था। उसका पुत्र सकंदर लोदी ने ब्याना, बिहार, तिरहुत, धौलपुर, मंदसौर, अर्वतगढ़, शिवपुर, नारवार, चंदेरी और नागर के क्षेत्रों को भी जीत कर अपने राज्य में मिलाया। ग्वालियर राज्य को बहुत कमजोर बना दिया और मालवा का राज्य तोड़ दिया। सिकंदर ने 1504 ई0 में आगरा नगर की नींव डाली। लोदी वंश का आखिरी शासक इब्राहीम लोदी उत्तर भारत के एकीकरण का काम और भी आगे बढ़ाने के लिए व्यग्र था। ग्वालियर को अपने अधीन करने में वह सफल हो गया और कुछ काल के लिए उसने राजपूत शासक राणा साँगा का आगे बढ़ना रोक दिया। किंतु अफगान सरकार की अंतर्निहित निर्बलताओं ने सुल्तान की निपुणताहीन कठोरता का संयोग पाकर, आंतरिक विद्रोह तथा बाहरी आक्रमण के लिए दरवाजा खोल दिया। जहीरूद्दीन मुहम्मद बाबर ने 2 अप्रैल 1526 ई0 को पानीपत की प्रथम लड़ाई में इब्राहीम को हरा और मौत के घाट उतारकर भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना की। सिकन्दर लोदी ने आगरा को अपनी राजधानी बनाया। उसने मुसलमानों को ताजिया निकालने एवं मुस्लिम स्त्रियों को पीर एवं संतों के मजार जाने पर प्रतिबंध लगा दिया था। साथ ही हिन्दुओं को पर्व त्योहार पर यमुना के घाटों पर स्नान करने से रोक दिया था। उसने नाईयों को हिन्दुओं की दाढ़ियां बनाने से रोक दिया था। उसने नगरकोट के ज्वालामुखी मंदिर की मूर्तियां को तोड़ दिया था। लोदी शासकों के मकबरे को दिल्ली में लोदी गार्डन के नाम से जाना जाता है।

बाबर (1526–1530 ई0)

(मुगल साम्राज्य का उदय) 1526 ई0 – 1707 ई0

1526 ईस्वी के बाद मुगल शासक बाबर और उसके वंशजों का एकक्षत्र राज्य भारत में शुरू हो गया। इसके बाद भारत में जो भी राजपूत राजा पैदा हुए, वो मुगलों के हाथों मारे गए या मुगलों के अधीनस्थ होकर भारतीय जनता पर राज किए। यहाँ उल्लेखनीय तथ्य यह है कि बाबर के

बाद के मुस्लिम शासकों को इतिहास में मुगल काल तथा इसके पूर्व के मुस्लिम शासकों के काल को 'सल्तनत काल' या सुल्तानों का काल कहा जाता है।

बाबर के द्वारा मुगलवंश की नींव रखने के बाद मुगलों ने भारत की संस्कृति पर अपने गुलाम ब्राह्मणों और राजपूतों से मिलकर अपना अमिट छाप छोड़ा। बाबर के बाद उसका लड़का हुमायूँ मुगल शासक बना। प्रथम मुगल सम्राट बाबर के पुत्र नसीरूद्दीन "**हुमायूँ**" का मुगल साम्राज्य की नींव डालने में काफी योगदान है। हुमायूँ के बेटे का नाम जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर था।

अकबर (1556–1605 ई०)

हुमायूँ के बाद मुगल वंश का तृतीय शासक "**अकबर**" बना। अकबर ने 1556 ईस्वी में (हेमू) हेमचंन्द्र विक्रमादित्य के साथ पानीपत की दूसरी लड़ाई लड़ी और विजयी रहा। आंबेर के कछवाहा राजपूत "**राजा भारमल**" ने 1526 ई. में अकबर के दरबार में अपने राज्य वापस पाने के लिए अपनी बेटी राजकुमारी हरखा बाई का विवाह अकबर से करना स्वीकार किया था। भारमल को अकबर के दरबार में ऊँचा स्थान मिला और उसके बाद उसके पुत्र भगवंत दास और पौत्र मानसिंह भी दरबार में ऊँचे सामंत बने रहे। मान सिंह 1576 ईस्वी में अकबर के नवरत्नों में शामिल हो गया (चन्द्रा 2007, पृष्ठ 242–243, सरकार 1984, पृष्ठ 36)। **उदय सिंह** ने अपनी पुत्री जोधाबाई का विवाह अकबर से किया और जोधाबाई विवाहोपरांत मुस्लिम बनी और मरियम–उज–जमानी कहलायी। उसे विवाह के बाद आगरा या दिल्ली में कोई महत्वपूर्ण स्थान भी नहीं मिला था, बल्कि भरतपुर जिले का एक छोटा सा गाँव मिला था। अकबर की मृत्यु 1605 में हुई थी। उसके पुत्र जहांगीर द्वारा उसके सम्मान में लाहौर में एक मस्जिद बनवायी गई थी (नाथ 1982, पृष्ठ 52)। राजपूत राजकुमारियों का मुस्लिम राजाओं से विवाह संबंध बनाने का प्रकरण अकबर के काफी समय पूर्व से ही था, किन्तु अधिकांश विवाहों के बाद दोनों परिवारों के आपसी संबंध अच्छे

नहीं रहे और न ही राजकुमारियाँ कभी वापस लौटकर घर आयीं। हालांकि अकबर ने इस मामले को पिछले प्रकरणों से अलग रूप दिया, जहाँ उन रानियों के ब्राह्मण और राजपूत भाईयों या पिताओं को पुत्रियों या बहनों के विवाहोपरांत अकबर के यहाँ मुस्लिम ससुराल वालों जैसा ही सम्मान मिला करता था। उन ब्राह्मण और राजपूतों को अकबर के दरबार में भी अच्छा स्थान मिलता था (सरकार 1984, पृष्ठ 37)। हालांकि कुछ राजपूत और ब्राह्मण स्त्रियों ने अकबर के हरम में प्रवेश लेने पर इस्लाम स्वीकार किया, फिर भी उन्हें पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता थी, साथ ही उनके सगे–संबंधियों को जो ब्राह्मण और राजपूत थे, उन्हें दरबार में उच्च–स्थान भी मिला था (चन्द्रा 2007, पृष्ठ 243)। दरबार के ब्राह्मण, राजपूत और मुस्लिम दरबारियों के बीच संपर्क बढ़ने से आपसी विचारों का आदान–प्रदान हुआ और दोनों धर्मों हिन्दू और मुस्लिम (हिन्दू यानि राजपूत और ब्राह्मण) में सद्भाव की प्रगति हुई। इससे अगली पीढ़ी में दोनों रक्तों का संगम हुआ, जिसने दोनों संप्रदायों के बीच सौहार्द को भी बढ़ावा दिया। परिणामस्वरूप ब्राह्मण और राजपूत मुगलों के सर्वाधिक शक्तिशाली सहायक बने, राजपूत सैन्याधिकारियों ने मुगल सेना में रहकर अनेक युद्ध किये तथा जीते। इनमें गुजरात का 1572 का अभियान भी था। (सरकार 1984, पृष्ठ 38–40)।

महाराणा प्रताप – 1576 ईस्वी – महाराणा प्रताप हल्दी घाटी में अकबर के हाथों हार गया।

हल्दी घाटी की लड़ाई बहुत ही रोचक थी। इस युद्ध में अकबर स्वयं नहीं लड़ रहा था बल्कि उसकी ओर से उसका मुख्य सेनापति मान सिंह लड़ रहा था और महाराणा प्रताप भी स्वयं नहीं लड़ते हुए अपने ओर से अपने सेनापति हकीम खान सूर को भेजा था। है न मजेदार बात! ये हिन्दू – मुस्लिम लड़ाई नहीं वरण ये सिर्फ सत्ता की लड़ाई थी।

तत्कालीन समाज में वेश्यावृति को सम्राट का संरक्षण प्रदान था। अकबर के यहाँ एक बहुत बड़ा हरम था, जिसमें बहुत सी स्त्रियाँ थीं। इनमें अधिकांश स्त्रियों को बलपूर्वक अपहृत करवा कर वहाँ रखा जाता था। कहा

जाता है कि अकबर के कुछ लोग हिन्दू सामंत, दरबारी या सेनापति की सुन्दर स्त्रियों को किसी भी जगह देखता था, उसे बलपूर्वक उठाकर ले जाता था और सम्राट की आज्ञा बताते हुए उस स्त्री को सम्राट अकबर के हरम में डाल दिया जाता था। **''आईने अकबरी'** के लेखक ''अब्दुल कादिर बदायूंनी'' कहते हैं कि बेगमें, कुलीन, दरबारियों की पत्नियाँ अथवा सुंदर स्त्रियाँ जब कभी बादशाह की सेवा में पेश होने की इच्छा करती थी, तो उसे पहले अपनी इच्छा की सूचना देकर उत्तर की प्रतिक्षा करनी पड़ती थी, जिन्हें यदि बाद में योग्य समझा जाता था, तो उसे हरम में प्रवेश की अनुमति दी जाती थी। (आईने अकबरी, पृष्ठ 15, कौन कहता है – अकबर महान था! 10. क्या ऐसा कामुक एवं पतित बादशाह अकबर महान है?!! जागरण जंक्शन। डी0के0 श्रीवास्तव) अकबर ने अपने सारे दरबारी, सेवादार एवं छोटे–छोटे जगहों पर नियुक्त राज्यपाल को बाध्य किया करता था कि वह अपने घर की सुन्दर स्त्रियों का नग्न प्रदर्शन सामूहिक रूप से आयोजित करें, जिसे अकबर ने खुदारोज **(प्रमोद दिवस)** का नाम दिया हुआ था। इस उत्सव के पीछे अकबर का एकमात्र उद्देश्य सुन्दरियों को अपने हरम के लिए चुनना था (राजस्थान का इतिहास, कर्नल टॉड, पृष्ठ 274–275)। गोंडवाना की रानी दुर्गावती पर भी अकबर की कुदृष्टि थी। उसने रानी को प्राप्त करने के लिए उसके राज्य पर आक्रमण कर दिया। युद्ध के दौरान वीरांगना ने अनुभव किया कि उसे मारने की नहीं वरन बंदी बनाने का प्रयास किया जा रहा है, तो उसने वहीं आत्महत्या कर ली। तब अकबर ने उसकी बहन और पुत्रबधू को बलपूर्वक अपने हरम में डाल दिया। अकबर ने यह प्रथा भी चलाई थी कि उसके पराजित शत्रु अपने परिवार से चुनी हुई महिलायें उसके हरम में भेजें। अन्य उल्लेखनीय कार्यों की ओर देखें तब स्पष्ट हो जाएगा कि अकबर अपने हिन्दू सामंतों (ब्राह्मण और राजपूत) से कितना अभद्र व्यवहार किया करता था। (डॉ0 डी0एल0 पालीवाल, (शिक्षा). महाराणा प्रताप स्मृति ग्रंथ. साहित्य संस्थान राजस्थान विद्यापीठ. प0 183)

अकबर के नवरत्न और प्रधान सेनापति मानसिंह द्वारा विश्वनाथ मंदिर के निर्माण को अकबर की अनुमति के बाद किए जाने के कारण

हिन्दूओं ने उस मंदिर में जाने का बहिष्कार कर दिया था। कारण साफ था, कि प्रधान सेनापति मानसिंह के परिवार के अकबर से वैवाहिक संबंध थे। (उदय कुमार, एस पी (2005). प्रजेन्टिंग द पास्ट : एंक्शियस हिस्ट्री एण्ड एन्किशयंट फ्यूचर इन हिन्दुत्व इंडिया. ग्रीनवुड प्रकाशन गृह. प0 99. आई0एस0बी0एन0 0275972097.) अकबर के हिन्दू सामंत (ब्राह्मण और राजपूत) अकबर की अनुमति के बगैर मंदिर निर्माण तक नहीं करा सकते थे। बंगाल में प्रधान सेनापति मानसिंह ने एक बार मंदिर का निर्माण अकबर की बिना अनुमति के आरंभ किया था, जब अकबर को इस बात का पता चला तब उस काम को रूकवा दिया था और 1595 में उसे मस्जिद में बदलने के आदेश दिया। अकबर के प्रति हिन्दू किसान–मजदूरों के दिल में काफी नफरत भरी रहती थी। उन सबों के आक्रोश की हद औरंगजेब के काल में हुई एक घटना से पता चलता है। हिन्दू मजदूर–किसानों के एक नेता जाट राजाराम ने अकबर के मकबरे, सिकंदरा (आगरा) को लूटने का प्रयास किया, जिसे स्थानीय फौजदार मीर अबुल फजल ने असफल कर दिया। इसके कुछ ही समय बाद 1688 में राजाराम सिकंदरा में दोबारा प्रकट हुआ (वी0डी0 महाजन, हिस्ट्री ऑफ मेडीवियल इण्डिया. एस चाँद, पेज 168) और शाइस्ता खाँ के आने में विलंब का फायदा उठाते हुए, उसने मकबरे पर दोबारा सेंध लगाई और बहुत से बहुमूल्य सामान, जैसे सोने, चाँदी, बहुमूल्य कालीन, चिराग इत्यादि लूट लिए, तथा जो ले जा नहीं सका, उसे बर्बाद कर गया। राजाराम और उसके आदमियों ने अकबर की अस्थियों को खोद कर निकाल लिया एवं जलाकर भस्म कर दिया, जो कि मुस्लिमों के लिए घोर अपमान का विषय था। (निक्कालाओ मानुसी, (1907). स्टोरिया मोगोर,. जॉन मर्रे. पे0 319)। अकबर के कब्र को खोदकर तहस–नहस करने से साफ पता चलता है कि किसान नेता राजाराम जाट तथा अन्य लोग, मुस्लिम शासकों और उसके सामंतो के कारनामे से कितने त्रस्त थे।

अकबर की मृत्यु के बाद **''जहाँगीर''** (1605 ई0 – 1627 ई0)

गद्दी पर बैठा था। सम्राट जहाँगीर की मौत के बाद मुगल सिंहासन के उत्तराधिकारी के रूप में **''शाहजहाँ''** (1627 ई0 – 1658 ई0) शासक बना। शाहजहाँ के बाद भारत पर राज्य करने वाला छठा मुगल शासक **''औरंगजेब''** (1658 ई0 – 1707 ई0)बना था। औरंगजेब ने पूरे साम्राज्य में फतवा – ए – आलमगीरी (शरियत या इस्लामी कानून पर आधारित) लागू किया और कुछ समय के लिए गैर–मुस्लिमों और गैर राजपूत–ब्राह्मणों पर अतिरिक्त कर (जजिया) भी लगाया। गैर–मुसलमान और गैर राजपूत–ब्राह्मण जनता पर शरियत लागू करने वाला वो पहला मुसलमान शासक था। उसने अपनी धनलोलुप्ता हेतु कई हिन्दू धार्मिक स्थलों को नष्ट किया और कुछ मंदिरों के पुनरूद्धार हेतु धन मुहैया भी कराया था जैसे– गोहाटी का कामाख्या मंदिर, उज्जैन का महाकाल मंदिर, मथुरा का कृष्ण मंदिर। 1669 ई0 में औरंगजेब ने बनारस के ''विश्वनाथ मंदिर'' को तुड़वा दिया। लेकिन एक घटना से औरंगजेब के द्वारा एक मस्जिद तोड़ने का भी जिक्र मिलता है। एक समय गोलकुंडा के रियासतदार ने सम्राट औरंगजेब को सूखे का बहाना बनाकर लगान नहीं दिया था, औरंगजेब ने अपने गुप्तचर द्वारा इस सच्चाई का पता लगाने भेजा तो ये बात झूठ निकली और मालूम हुआ कि इसने सारी सम्पत्ती को एक मस्जिद में छुपा रखा है। उसके बाद औरंगजेब ने गोलकुंडा पर चढ़ाई कर दी और उस मस्जिद को तोड़कर सारा छुपा धन लूट लाया। ब्राह्मणी सलाहकारों ने सम्राट को अधिक आय हो, इसके लिए ब्रज में आने वाले सभी तीर्थ–यात्रियों पर भारी कर लगवाया। जजिया कर को पुनः प्रारंभ करवाया गया। तोड़े गये मंदिरों की जगह पर मस्जिद और सराय बनाई गईं तथा मकतब और कसाईखाने कायम किये गये। हिन्दुओं के दिल को दुखाने के लिए गो–वध करने की खुली छूट दे दी गई। उसके दरवारी और सेनापति के द्वारा उत्तर पश्चिमी भारत के बहुसंख्यक हिन्दुओं को काफी मजबूर किया। जिसके फलस्वरूप उत्तर पश्चिमी भारत के हिन्दुओं ने मुगलों से लोहा लेने हेतु नानक के नौवें अनुयायी गुरू तेगबहादुर से मदद माँगी। तेगबहादुर ने इसका विरोध किया तो औरंगजेब ने उन्हें फाँसी पर लटका दिया। इस दिन को कबीर और

नानक के शिष्य, जिन्हें अब ''सिक्ख'' कहते हैं आज भी अपने त्योहारों में याद करते हैं। औरंगजेब के शासन काल में युद्ध – विद्रोह – दमन – चढ़ाई इत्यादि का ताँता लगा रहा। उत्तर पश्चिम में कबीर और नानक के अनुयायियों की संख्या और शक्ति में बढ़ोतरी हो रही थी। दक्षिण में क्षत्रपति शिवाजी की मराठा सेना ने उसको नाक में दम कर दिया था। क्षत्रपति शिवाजी को औरंगजेब ने गिरफ्तार कर तो लिया, पर क्षत्रपति शिवाजी और सम्भाजी के भाग निकलने पर, उसके लिए चिंता का विषय बन गया था। अन्ततः क्षत्रपति शिवाजी महाराज ने औरंगजेब को हराया और मराठों ने पूरे दक्षिण भारत में अपनी ताकत बढ़ाई। क्षत्रपति शिवाजी की मृत्यु के बाद भी मराठों ने औरंगजेब को परेशान किया। औरंगजेब की मृत्यु दक्षिण के अहमदनगर में 3 मार्च सन् 1707 ई0 में हो गई। दौलताबाद में स्थित फकीर बुरूहानुद्दीन की कब्र के अहाते में उसे दफना दिया गया था। उसके बाद मुगल शासक बाबर के सशक्त उत्तराधिकारियों के क्रम का लगभग अंत हो गया।

नोट :– सवाई जय सिंह–II ने जयपुर शहर बसाया। वह 1743 ईस्वी तक जयपुर, उज्जैन, दिल्ली, बनारस तक राज किया। दिल्ली में जंतर–मंतर का निर्माण कराया। सवाई जय सिंह–II को "औरंगजेब' ने उसकी सेवा से खुश होकर "सवाई' की मौखिक उपाधि दी थी।

आकलन नं0–02

पंडित लेखकों के अनुसार लिखी गयी वर्ण व्यवस्था (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र), जाति व्यवस्था (सवर्ण, पिछड़ा, दलित) और आर्य–अनार्य, क्या आपको सही लगता है?

पूर्व के भाषा और लिपि का अर्थ समय के अनुसार कैसे बदल जाता है, आप इसका स्पष्ट अनुभव कर सकते हैं। अभी तक इस शब्द को लेखकों और राजनीतिज्ञ पुरोधों ने अपने स्वार्थ और दूसरे को नीचा दिखाने हेतु

जमकर उपयोग किये हैं। अब आप स्वयं ही इस आर्य और अनार्य शब्दों का अर्थ देख सकते हैं। भारत की 2500 वर्ष पूर्व लिपि व भाषा (पाली शब्दावली) में आर्य को अरिय और अनार्य को अनरियो के रूप में उच्चारण होता था।

आर्य यानि अरियो :– **"अरियो अठन्गीको मग्गो'**

उस समय अठन्गीको मग्गो यानि अष्टांगिक मार्ग को बोला जाता था। यानि आठ अंगों वाले मार्ग पर चलने वाला या पालन करने वाला व्यक्ति अरियो/आर्य/श्रेष्ठ/जानकार कहलाता था या बन जाता था। ये अठन्गीको मग्गो यानि आठ अंगों वाला मार्ग क्या है?

इसमें आठ मार्ग निम्न है :– 1–सम्मा वाचा (सम्यक वाणी), 2–सम्मा कम्मन्तो (सम्यक कर्म), 3–सम्मा आजिवो (सम्यक आजीविका), 4–सम्मा व्ययामो (सम्यक प्रयत्न), 5–सम्मा समाधी (सम्यक एकाग्रता), 6–सम्मा सती (सम्यक स्मृति/सजगता), 7–सम्मा दित्ती (सम्यक दृष्टि/दर्शन), 8–सम्मा संकप (सम्यक संकल्प)।

ये आठ मार्ग है। इस मार्ग पर जो चला वह आर्य कहलाया।

अनार्य यानि अनरियो :–' **" हिनो, गम्बो, पौथो, जनिको, अनरियो अनथ्य संगितो'**

यानि हीन, गवाँर, नहीं जानने वाला, अनाड़ी, गलत संगती वाला अनरियो या अनार्य कहलाता था, जिसको ग्रामीण भाषा में आज भी अनरियो या अनाड़ी कहते हैं।

आजादी के बाद भारत में बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर जी की अध्यक्षता वाली लिखित पहली और अंतिम संविधान बनी थी, जो भारत में 26 जनवरी 1952 ईस्वी को पूर्ण रूप से लागू की गयी थी। उसी संविधान के अंदर शैक्षणिक स्तर, गैर शैक्षणिक स्तर और परित्यक्त स्तर को देखकर तीन वर्गों की रूप–रेखा तैयार हुई थी, जो निम्न प्रकार से है – सवर्ण वर्ग, पिछड़ा वर्ग, दलित–आदिवासी वर्ग । उनमें से सवर्ण समाज को आर्य और पिछड़ा, दलित–आदिवासी समाज को अनार्य कहकर आज का भारतीय

समाज या लेखक प्रचारित करने लगा। आज के सवर्ण समाज में मुख्य रूप से आज की अगड़ी जातियाँ (ब्राह्मण, भूमिहार, राजपूत, कायस्थ, कुछ राज्यों में बनिया और कुछ राज्यों में (कुर्मी) पटेल शामिल हैं। क्या ये आर्य हैं? और कुछ राज्यों में अशिक्षा और निर्धनता को देखकर पिछड़ी जाति का निर्माण हुआ था, उसमें मुख्य रूप से कुर्मी, यादव, बनिया और कुछ राज्यों में राजपूत शामिल हैं। क्या ये अनार्य हैं?

आप समझ रहे हैं, खुद आपको हँसी आएगी कि एक जगह राजपूत आर्य हैं और दूसरी जगह अनार्य, एक जगह कुर्मी आर्य और दूसरी जगह अनार्य, एक जगह बनिया आर्य और दूसरी जगह अनार्य।

क्या, ऐसा हो सकता है?

भारतीय सभ्यता और संस्कृति में यहाँ के लेखक और पंडितों के द्वारा ऐसे बहुत ही अतार्किक और विद्धेष पूर्ण बातों का जिक्र मिलता है, जिसका भारतीय समाज के अंदर कुछ धनाड्य और बुद्धिजीवी वर्ग द्वारा काफी पूर्व से प्रचारित व प्रसारित किया जाता रहा है। ऐसे अनेकों प्रश्न हैं, जिन्हें लेखक और पंडितगण द्वारा समय–समय पर समाज के अंदर आध्यात्मिक ग्रंथों और साहित्यिक किताबों या शैक्षणिक किताबों के माध्यम से समाज के बीच परोसने का काम किया गया है। आज भारतीय समाज की शिक्षित पीढ़ी इन आध्यात्मिक ग्रंथों और साहित्यिक किताबों के माध्यम से खुद या समाज के बीच लोगों को दिग्भ्रमित कर भ्रम फैलाने का काम कर रही है। ऋषियों और ऋग्वेद को प्राचीन साबित करने के चक्कर में बतौर औजार "ऋ' का अविष्कार हुआ है। "ऋ' के अविष्कारक ने "ऋ' का अविष्कार तो बहुत बाद में किया, लेकिन उसे "ऋ' को बहुत प्राचीन साबित करना था। सो, "ऋ' को बहुत प्राचीन साबित करने के लिए आविष्कारक ने एक साजिश रची और उसने बगैर सोचे–समझे इसे ले जाकर वर्णमाला के स्वरों में बैठा दिया। "ऋ' को वर्णमाला के स्वरों में उसने इसलिए बैठाया कि यह कहा जा सके कि यह बहुत प्राचीन ध्वनि है और यह तब की है जब इसका उच्चारण स्वर की भाँति होता था। मगर "ऋ' का उच्चारण स्वर की भाँति कभी नहीं होता

था, सबूत भी नहीं है। इसमें स्वर का कोई गुण नहीं है। पहले भी नहीं था और आज भी नहीं है। "ऋ' के आविष्कारक ऋषियों और ऋग्वेद को कई मामलों में आधा–अधूरा बहुत प्राचीन साबित करने में सफल तो हो गया, मगर दुनिया के भाषा वैज्ञानिकों को हैरत में डाल दिया। आज सभी भाषा वैज्ञानिक कहते हैं कि "ऋ' का उच्चारण बहुत प्राचीन काल में स्वर की भाँति कैसे और कहाँ से होता था, हमें नहीं पता है। अभिलेखीय साक्ष्य बताते हैं कि "ऋ' प्राचीन ध्वनि नहीं है, तो जाने क्यों भाषा वैज्ञानिक इसे प्राचीन मानने पर तुले हुए हैं? लिपि वैज्ञानिकों का कहना है कि यह हमारी पूर्व की प्राकृत और पाली वर्णमाला में था ही नहीं, तो फिर इसके पहले ऋग्वेद लिखे जाने का सवाल ही कहाँ पैदा होता है। ऋग्वेद में चर्चा की गयी प्रमुख नदी सिंधु है। उसमें इसका बार–बार उल्लेख है। "सिंधु' नाम गुप्तकाल या आठवीं सदी से पहले किसी भी अभिलेख में नहीं मिलता है। अब आप ऋग्वेद का काल तय कर लीजिए। तब आप कह सकते हैं कि "ऋ' मौखिक रही होगी। मगर आप सिर्फ "ऋ' को मौखिक क्यों और कैसे मानियेगा, जबकि उसके पहले हड़प्पाई लेखन के लगभग 400 नमूने हैं, अशोक के अनेक अभिलेख उपलब्ध हैं, तथा शेष स्वर–व्यंजन मौजूद हैं। वेदों की रचना के बाद ही न अस्तित्व में आईं होंगी चतुर्वेदी, त्रिवेदी, द्विवेदी जैसी जातियाँ! ब्राह्मणों द्वारा लिखे गये ग्रन्थ पुराण का पुराना (पुराण) अर्थात एकदम प्राचीन काल का नामकरण किए जाने के पीछे भी वही मनोविज्ञान काम कर रहा है, जो नए मंदिर को प्राचीन मंदिर बताए जाने के पीछे कर रहा है।

भारत का प्रामाणिक इतिहास ईसा से लगभग 600 वर्ष पूर्व से मिलना शुरू हुआ है, जो काफी तथ्य और प्रमाण के साथ मौजूद है। अब आप स्वयं ही ईसा से पूर्व 600 वर्ष से ईसा बाद 800 वर्ष के बीच के यानि 1400 वर्षों के इतिहास को देख और समझ सकते हैं। प्रथमतः ईसा से 600 वर्ष पूर्व में पठन–पाठन हेतु तक्षशिला विश्वविद्यालय था, जिसमें ज्ञान, विज्ञान के अलावा धर्म ज्ञान की शिक्षा दी जाती थी। द्वितीय ईस्वी सन् के आस–पास

नालन्दा विश्वविद्यालय में खगोलशास्त्र, विज्ञान शास्त्र, धर्म शास्त्र के पठन–पाठन हेतु भारत के साथ–साथ अन्य देशों के विद्यार्थी आते थे। वहां इन सबों के पढ़ने और रहने के साथ–साथ पूजा स्थल की व्यवस्था आज खुदाई में मिली है। अब आप इसी बातों से अनुमान लगायें कि इस विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण कर अपने–अपने देश लौटने वाले विद्यार्थी इसी नालन्दा के ज्ञान और धर्म को लेकर आज भी नालंदा और भारत की बुद्ध संस्कृति की शोभा बढ़ा रहे हैं। इसी कड़ी में तीसरा विश्वविद्यालय विक्रमशिला विश्वविद्यालय 8वीं–9वीं शताब्दी में हुआ करता था। आज जब तीनों विश्वविद्यालयों की खुदाई की गई है तब हर जगह सभ्यता और संस्कृति की समानता देखने को मिली है और वो समानता है बौद्धिक धर्म की और बौद्धिक अनुयायीयों की। यानि उस समय कहीं भी ब्राह्मणवादी व्यवस्था नहीं थी, काल्पनिक कर्मकांड कहीं मिलता ही नहीं है, मिलता है तो सिर्फ "बुद्ध' और बौद्धिक सभ्यता। कुछ पाठकगण कहते हैं कि ये सभी बौद्धिक ज्ञान पीठ था तो "बुद्ध' और बौद्धिक सभ्यता मिलेंगें ही! परन्तु मैं जब उनसे पूछता हूँ कि अब आप ब्राह्मणी सभ्यता वाली ज्ञानपीठ बतायें जहाँ ब्राह्मणी सभ्यता और संस्कृति की पढ़ाई होती थी और वह जगह कहाँ है, जहाँ खुदाई में उसका अवशेष मिला हो, इस पर सभी ब्राह्मणी भक्त मौन हो जाते हैं। ईसा से पूर्व तक्षशिला, ईसा बाद नालन्दा और विक्रमशिला के अन्दर आज खुदाई में पढ़ने वाले और पढ़ाने वाले सभी लोगों के पूजा ध्यान हेतु "बुद्ध' की मूर्ति मिली है। जिन भाईयों को इसका प्रमाण देखना है, तो वो आज भी जाकर देख सकते हैं। आज भारत की उस बुद्ध संस्कृति से भारत के अलावा जापान, कोरिया, थाईलैंड, बर्मा, श्रीलंका, तिब्बत, सिंगापुर और अन्य देश काफी प्रभावित हैं। आज उन सभी देशों में सिर्फ भारत की बुद्ध संस्कृति की झलक देखने को मिलती है।

इससे साफ पता चलता है कि भारत के अन्दर विक्रमशिला विश्वविद्यालय (8वीं शताब्दी) से पूर्व कभी भी मनु स्मृति या ब्राह्मणवाद या कर्मकाण्ड का नामों निशान नहीं था। ये सभी विक्रमशिला के बाद की

उत्पत्ति है।

प्राचीन भारतीय सभ्यता का पुरातात्विक दृष्टिकोण से प्रमाणिक काल ईसा पूर्व 600 से लेकर ईसा पूर्व 3500 ईस्वी तक का रहा है। क्योकि पुरातात्विक विभाग के पास इस काल के काफी अवशेष मौजूद हैं, जिनसे मानव सभ्यता के विकसित होने का काफी पुख्ता सबूत मिलता हैं। परन्तु उस काल के लोग कौन सी धर्म–संस्कृति को मानते थे या कौन सी लिपि और भाषा को व्यवहारिक रूप से प्रयोग में लाते थे आदि तथ्य आज तक किसी भी पुरातात्विक विशेषज्ञों को सही–सही पता नहीं चल पाया है। केवल अनुमान के आधार पर विभिन्न इतिहासकार अलग–अलग प्रकार से वर्णन करते हैं।

फिर भारतीय सभ्यता–संस्कृति का इतिहास लिखने वाले लेखक–गण कैसे ज्ञात कर लिए कि ब्राह्मणी संस्कृति हजारों वर्ष पूर्व की है?

आकलन नं0–03

भारत में 800 ईस्वी के पूर्व जैसा भी धार्मिक–सामजिक माहौल था, वह संतोषजनक स्थिति में था। आपको भी ऊपर लिखित 1500 साल की भारत की सत्ता व्यवस्था पढ़ने पर आभास हो गया होगा कि कोई भी और किसी भी प्रकार का उस काल में प्रदूषित ग्रन्थों की चर्चा या उपलब्धता की प्रामाणिक पुष्टि नहीं होती है। इसी वजह से ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर ईसा पूर्व 544 ई0 से लेकर ईसा बाद 800 ईस्वी तक जितने भी भारत में शासक हुए, उस समय के काल को ''भारत का स्वर्णकाल'' बोला जाता था। उस समय मुख्य रूप से जितने भी राजा हुए, उन्होंने अपने पूर्वजों के नाम पर अथवा स्वयं के नाम पर वंश चलाने का काम किया जैसे – हर्यंक वंश, नंद वंश, मौर्य वंश, सुंग वंश, कुषाण वंश, हर्षवर्द्धन वंश। उस समय में भारत के अंदर कभी भी, किसी भी साम्राज्य में या किसी क्षेत्र में वंश को छोड़कर जाति सूचक नामो की चर्चा नहीं मिलती है। सच्चाई यह है कि उस काल में वर्ण या जाति व्यवस्था थी ही नहीं। इसलिए जाति या वर्ण व्यवस्था का अभिलेखीय साक्ष्य मिला ही नहीं है।

सबसे पहले हमें और आपको यह देखना होगा कि ये जाति सूचक शब्द ब्राह्मण और राजपूत भारतीय समाज के अंदर कब और कैसे आये। 850 ईस्वी से पूर्व इनके (राजपूत और ब्राह्मण) पूर्वज आप के और हमारे बीच के पूर्वज थे।

आज के ब्राह्मण जो शर्मा, मिश्रा, दुबे, द्विवेदी, त्रिवेदी, चौबे, चतुर्वेदी, उपाध्याय, पंडित इत्यादि सरनेम का उपयोग करते हैं, वे सरनेम वास्तव में पालवंश के शासकों द्वारा स्थापित उत्तर पूर्वी भारत के अंग प्रदेश में अवस्थित ''विक्रमशिला विश्वविद्यालय'' (आज का भागलपुर, बिहार) के अंदर शिक्षा प्रणाली की एक प्रकार की उपाधि या डिग्री थी, जो वहाँ पढ़ने वाले प्रत्येक विद्यार्थी या पढ़ाने वाले प्रत्येक शिक्षक को योग्यता अनुसार मिलती थी। जैसे – पढ़ने वाले विद्यार्थी को 108 नंबर मिलने पर ''पंडित'' और ''160'' नंबर मिलने पर ''महापंडित'' की उपाधि मिलती थी। आज के स्नातक के बराबर डिग्री लेने पर ''शास्त्री'' की और स्नातकोत्तर के बराबर की डिग्री लेने पर ''आचार्य'' की उपाधि मिलती थी, जो आज भी संस्कृत महाविद्यालयो में प्रचलित है और उसमें पढ़ने वाले प्रत्येक विद्यार्थी को उपाधि स्वरूप प्राप्त होता है। उसी प्रकार वेद और ग्रंथों का ज्ञान अर्जित करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए ये उपाधि की व्यवस्था थी, जो निम्न है – एक वेद या धर्म ग्रन्थ पढ़ने वालों को – ''मिश्रा'', 'मुखर्जी', ''शर्मा'' और दो वेद के विद्यार्थी को – ''दुबे'', ''द्विवेदी'' और तीन वेद के विद्यार्थी को ''त्रिवेदी'', ''तिवारी'', ''त्रिपाठी'' और चार वेद के विद्यार्थी को – ''चौबे'', ''चतुर्वेदी'', ''चटोपाध्याय'', ... कहा जाता था या सरनेम के रूप में लिखा जाता था। विश्वविद्यालय में जितने भी पढ़ाने वाले शिक्षक हुआ करते थे उनको ''आचार्य'', ''उपाध्याय'' या ''मुखोपाध्याय'' इत्यादि बोला जाता था।

वहाँ पढ़ने और पढ़ाने के लिए हर वंश या हर (ब्राह्मणी मतानुसार) गोत्र के लोग जाते थे, जो बाद में अपनी शिक्षा व्यवस्था या काबिलियत को देखकर अपने–अपने पूर्वजों को या वंश को भूलकर अपने नवीन समाज का नामाकरण कर एक नयी जाति सूचक सम्बोधन ''ब्राह्मण'' (ब्राह्मण का अर्थ है – ज्ञानी या जानने वाला) के रूप में समाज में स्वयं को स्थापित किया।

जैसे – आज के कलाकार लोग हर समाज–धर्म से मुम्बई जाकर फिल्म उद्योग में काम करते हैं और बाद में उनकी एक अलग ही कलाकार जाति (बॉलीवुडिया) बनकर आपस में ही संबंध बनाना शुरू कर देते हैं।

इसका एक छोटा सा उदाहरण दे रहा हूँ। पौराणिक मान्यताओं (ब्राह्मणी मतानुसार) के आधार पर भारतीय सभ्यता और समाज को सप्तऋषियों के वंशज या अनुयायी के तौर पर जाना जाता है। सप्तऋषियों ने वेद जैसे ग्रन्थ की रचना किये हैं (यद्यपि अभी तक इसकी प्रामाणिक पुष्टि नहीं हुई है)। भारतीय समाज को इन्हीं ऋषियों का वंशज या अनुयायी मानते हुए हर उस ऋषि के अनुयायी या वंशज को ऋषि का नाम दिया गया और यह आगे चलकर ऋषि नाम का “गोत्र' (ब्राह्मणी मतानुसार) कहकर प्रचलित हुआ, जिनमें ऋषि नाम या “गोत्र' (1) गौतम (2) कश्यप (3) भारद्वाज (4) विश्वामित्र (5) जमदग्नि (6) वशिष्ठ (7) अत्रि था, लेकिन बाद में कुछ ऋषि–मुनियों ने अपने नाम को जोड़कर सात गोत्र से आगे किया जिनमें (8) कौशिक ऋषि (9) वत्स ऋषि (10) कौडिन्य ऋषि (11) अगस्त ऋषि हैं और आज भी समाज में विद्यमान हैं। ब्राह्मणी मतानुसार भारत के अंदर जितनी भी जातियाँ हैं, सभी जातियों के अंदर इन 11 “गोत्र' में से कोई–न–कोई ''गोत्र'' विद्यमान हैं। हो सकता है किसी भाई–बंधु को उनके या उनके पूर्वजों के व्यवहारिक जानकारी की कमी की वजह से “गोत्र' नाम मालूम नहीं होगा। आज भारत में जितने भी प्रकार के समाज हैं सभी समाजों के अंदर किसी–न–किसी (ऋषि नाम का) ''गोत्र'' समाहित है। लेकिन एक बात और ध्यान देने वाली है कि हर एक जाति (समाज) के अंदर सिर्फ एक ही “गोत्र' विद्यमान हैं (कुछ जगह अपवाद को छोड़ कर) – जैसे कुर्मी (पटेल) – “कश्यप गोत्र', कहार (चन्द्रवंशी) – “भारद्वाज गोत्र', यादव – “अत्रि गोत्र', कायस्थ – “कश्यप गोत्र' इत्यादि। लेकिन मुख्य रूप से दो जातियों (ब्राह्मण और राजपूत) के अंदर सारे “गोत्र' विद्यमान हैं। इन दो जातियों के अंदर स्व “गोत्र' या एक सामान “गोत्र' में शादी करने की प्रथा नही ंहै। जैसे मान लीजिए कि इन दो जातियों (ब्राह्मण और राजपूत) में

किसी का गोत्र कश्यप है तो वह कश्यप गोत्र में शादी नहीं करेगा। इसके पीछे ब्राह्मण और राजपूतों का कहना है कि हम दोनों के पूर्वज कभी भाई रहे होंगे, इसलिए हमलोग आपस में शादी नहीं करते हैं।

इससे साफ जाहिर होता है कि हर वर्ग या हर वंश या हर जाति के लोग जो भिन्न–भिन्न गोत्र से सम्बन्ध रखते थे, वे लोग शिक्षा ग्रहण करने गए और शिक्षित होने के बाद अपने ज्ञानी होने के अहम या घमंड में अपने आपको अपने–अपने समाज से अलग करते गए और एक नयी जाति या समाज की स्थापना करते हुए उसका नाम "ब्राह्मण' रखा और उस वर्ग में शामिल हो गये।

एक बहुत ही आश्चर्य वाली बात है कि ये ब्राह्मण भारत के कुछ राज्यों में (राजपूत और ब्राह्मण) को छोड़कर अन्य समाज के अंदर "गोत्र' के द्वारा अपने आप को उनसे अलग करने का काम किया है। इसके लिए तथाकथित स्वघोषित पंडितों ने भारतीय समाज के अंदर अपनी कुत्सित ज्ञान का परिचय देते हुए, "गोत्र' का नामाकरण सप्तऋषि के नाम पर रहने के बाद भी उस समाज को दिग्भ्रमित किया और ऋषि के नामों से अलग करने का काम किया है। इसका प्रमाण यह है कि भारत में ब्राह्मणों ने कुछ क्षेत्रों और कुछ समाज में गोत्र का नाम "ऋषि नाम' की जगह पर सामान्य प्रकार के नामों द्वारा प्रसारित करने का काम किया है। इसका मैं छोटा सा उदाहरण दे रहा हूँ – भारतीय समाज के अंदर काफी वर्षों तक गुलामी की वजह से अशिक्षा काफी बढ़ गयी थी, तब समाज के अंदर अपने पूर्वज (गोत्र, कुल देवता, कुल गुरू) के विषय में जानकारी का काफी अभाव हो गया था। परन्तु वर्त्तमान में 100–50 वर्षों से समाज में आर्थिक और शैक्षणिक प्रगति पुनः प्राप्त होने के बाद से प्रत्येक समाज के लोगों में अपनी पुरानी पहचान वापस पाने की जिज्ञासा बढ़ने लगी। तब उस समाज के लोग अपने गोत्र की जानकारी अपने–अपने क्षेत्र के कर्मकांडी (पूजा करवाने वाला) से लेने लगे। इसी का फायदा उठाते हुए कर्मकांडी ब्राह्मणों ने एक साजिश के तहत अथवा अज्ञानतावश उस समाज की झूठी संतुष्टि के लिए उसकी

जातीय शाखा या बनावटी नाम को (ऋषि नाम से अलग) गोत्र का नाम बताकर उस समाज को दिग्भ्रमित करने का काम किया है। जबकि गोत्र परंपरा एवं गोत्र का नामाकरण (ब्राह्मणी मतानुसार ऋषि नाम) सप्त ऋषि के नाम पर आधारित है, जो आज भी कुछ क्षेत्र या समाज में देखने को मिल जायेगा।

आज भी समाज में कुछ लोग ज्यादा पढ़ने के बाद अपने अशिक्षित समाज, अशिक्षित परिवार एवं अशिक्षित जाति को भूल जाते हैं अथवा अधिक धनी होने पर गरीब समाज, गरीब जाति एवं गरीब परिवार को भूल जाते हैं और यह बिल्कुल पहले के ब्राह्मणों और राजपूतों जैसी प्रवृत्ति ही है। फर्क सिर्फ इतना है कि आज वे अपनी नयी जाति या नया समाज नहीं बना पाते हैं।

क्या मैं सही कह रहा हूँ, न।

1000 ईस्वी के बाद से जितने भी पढ़े–लिखे डिग्रीधारी उपाधि वाले लोग थे, वे अपने आप को ब्रह्म का ज्ञाता कहकर समाज में अपने आपको प्रसारित व प्रचारित करने लगे। समाज के अंदर अपने ज्ञान संबंधी अहंकार के कारण अपने आपको सर्वोच्च कहना और कहलवाना शुरू कर दिया। इन्होंने सदियों पूर्व जितने भी संत, महात्मा, ज्ञानी, विद्वान हुए, उनमें से कुछ को अपना झूठा पूर्वज कहकर और अपने आपसे रिश्ता जोड़कर समाज में प्रचार करने लगे और अपना एक अलग समूह बनाकर अपने लिए "ब्राह्मण' जाति सूचक शब्द का इस्तेमाल किया और इसका प्रचार–प्रसार करना शुरू कर दिया।

क्या किन्हीं सज्जन को या आपको 1000 ईस्वी से पूर्व किसी भी विद्वान या संत के बारे में ब्राह्मण या आज के ब्राह्मण का सरनेम उनके नाम के आगे–पीछे लिखा हुआ मिला है? सोचिये! चिंतन कीजिये!

मैं बताता हूँ! ऐसा कुछ भी नहीं है, ये आप भी महसूस कर सकते हैं। पौराणिक मान्यताओं (ब्राह्मणी मतानुसार) के आधार पर "रामकालीन'

समय में जितने भी ज्ञानी हुए सारे–के–सारे ऋषि–मुनि के नाम से जाने जाते थे। परन्तु किसी भी ऋषि–मुनि के पिता या बेटा कभी भी कोई ऋषि–मुनि नहीं होते थे, उस समय सिर्फ ज्ञान के आधार पर ही इस संरचना का पालन किया जाता था। उस समय किसी का सरनेम आज के ब्राह्मणों के जैसा नहीं होता था। रामकालीन समय के "रावण' को आज के कुछ लोग ब्राह्मण कहकर अपने आपको जोड़ने का काम और समाज को झूठी तसल्ली देने का काम कर रहे हैं। अब आप ही उन सज्जन से पूछिए कि जब "रावण' ब्राह्मण तब उसका भाई (कुम्भकरण, विभीषण), भतीजा–पुत्र (मेघनाथ), बहन (सूर्पनखा), पिताजी, चाचा, माता, दादा, नाना, सारे रिश्तेदार, सगे–सम्बन्धी सारे के सारे ब्राह्मण थे क्या? अथवा क्या उन्हें ब्राह्मण माना जाएगा? क्या ऐसा लगता है आपको? बल्कि उल्टे उन्हें राक्षस कहा गया है।

पौराणिक मान्यताओं के आधार पर "महाभारत' कालीन समय में भी जितने ज्ञानी हुए वे भी सारे–के–सारे ऋषि–मुनि कहलाये और इस काल में भी इनके अंदर ब्राह्मणों जैसा सरनेम नहीं मिलता है। सबसे अधिक ध्यान देने वाली बात यह है कि ये सारे ऋषि–मुनि वंशानुगत ऋषि–मुनि नहीं थे और इनके आगे के वंश के लोग भी वंशानुगत पुश्त–दर–पुश्त ऋषि–मुनि नहीं कहलाये। जैसे महाभारत काल में गुरू "द्रोणाचार्य' ऋषि हुए परन्तु उनका पुत्र ''अश्वश्थामा'' ऋषि नहीं कहलाया क्योंकि वे किसी राज्य के राजा थे।

इसी प्रकार से आप देखेंगे कि कुछ लोग आज के समय में "चाणक्य' (काल्पनिक नाम) को ब्राह्मण कहकर या ब्राह्मण का पूर्वज कहकर अपने आपको जोड़ने का काम कर रहे हैं। अब आप स्वयं देखिये चाणक्य का बचपन का नाम ''कौटिल्य'' था और बड़ा होने पर चाणक्य का नाम "विष्णुगुप्त' था। जिनके माता–पिताजी का नाम इतिहासकारों को सही–सही पता नहीं है। शिक्षा में वे काफी ही कुशाग्र बुद्धि के थे, जिसकी वजह से विष्णुगुप्त को शिक्षक के रूप में शिक्षा देने के लिए तक्षशिला विश्वविद्यालय में आमंत्रित किया गया था। यहाँ पर एक उल्लेखनीय तथ्य है

कि गुप्तवंश के राजाओं चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त आदि के सरनेम 'गुप्त' के आधार पर इतिहासकार उन्हें संभवतः वैश्य वर्ग का मानते हैं, परंतु यहाँ पर विष्णुगुप्त को ब्राह्मण मानते हैं जबकि विष्णुगुप्त में भी तो 'गुप्त' सरनेम लगा है। वहाँ पर विष्णुगुप्त के ज्ञान की प्राकाष्ठा को देखकर इनको एक उपाधि मिली थी जिसका सम्बोधन "चाणक्य' या आज के समय में कुछ ब्राह्मणवादियों द्वारा "पं0 चाणक्य' भी कहा जाता है। "चाणक्य' शब्द का संस्कृत में अर्थ तेज या कुशाग्र होता है। इसी वजह से आगे चलकर वे "चाणक्य' के नाम से प्रसिद्ध हुए। ऐसे चाणक्य के ऊपर कुछ प्रश्न मौर्य काल के समय में भी उठे हैं।

ये सारी बातें नए दौर के लेखक या ब्राह्मणों की झूठी करतूतों का परिणाम है, जो हर काल में अपनी झूठी उपस्थिति बनाने हेतु एक झूठी परिकल्पित कहानी बनाने का काम किया है। इन ब्राह्मणों ने पूरे भारतीय सभ्यता और संस्कृति के अंदर रामायण काल, महाभारत काल (क्योंकि इस काल के जितने भी ग्रन्थ हैं वो श्रुति (सुनी हुयी) या स्मृति (यादास्त) ग्रन्थ है जिसका रूपांतरण श्रुति या स्मृति से लिखित ग्रंथों में हुआ और जिसका काल 850 ईस्वी के बाद है।) के समय में दो–चार नामों को ब्राह्मणों के साथ जोड़कर उन नामों को ब्राह्मणों का पूर्वज कहकर समाज में भ्रम पैदा करने का काम किया है, जिसे आप भी महसूस कर सकते हैं।

क्या मैं सही कह रहा हूँ? आप समझ रहे हैं न।

इतना सबकुछ जानने और समझने के बाद तो स्पष्ट हो गया होगा कि ब्राह्मण कौन है और कैसे आया?

आकलन नं0–04

आदि शंकराचार्य या आदि शंकर भगत पाड़ा या शंकर भगवत्पदाचार्य ये तीनों एक ही नाम हैं, जिनका जन्म 788 ईस्वी में हुआ था। (आदि शंकराचार्य के जन्म समय के संबंध में – Max Muller, Macdonnel, Pathok, Deussen and Radhakrishnan आदि सभी लोगों का मत एक ही है

कि इन्होंने 788 ईस्वी में जन्म लिया)। यद्यपि आदि शंकराचार्य के जन्म समय को लेकर ग्रन्थों में काफी मत भिन्नता मिलती है। उसका सबसे बड़ा कारण हमें जो देखने को मिलता है, वह यह है कि आदि शंकराचार्य ने सबसे ज्यादा ध्यान "श्रुति स्मृति ग्रंथों' को अपने स्व हित और अपनी स्व प्रसिद्धि के अनुसार रूपांतरित करने में लगाया था। जिसमें मुख्य रूप से वेद की बात करता हूँ, "श्रुति वेद' पूर्व में सिर्फ एक ही वेद के रूप में मिलता था, जिसके अंदर की जानकारी मनुष्य की जरूरत के अनुसार थी। लेकिन शंकराचार्य द्वारा उसी वेद के साथ तीन वेद को और जोड़ा गया, जिसके अंदर सिर्फ बनावटी ब्राह्मणवादी कर्म–कांड ही है। जबकि ऐसा पहले नहीं था। आधार – Vidyasankar, S. "Sankaracharya'. Archived from the original on 16 June 2006. Retrieved 2006-07-24. उसी प्रकार से मनु स्मृति, श्रुति गीता, श्रुति महाभारत, श्रुति रामायण के अंदर ब्राह्मणों की उपस्थिति और भ्रामक बातों को बैठाकर लोगों के बीच में अपनी उपस्थिति प्रगाढ़ करने का काम किया है, जिसके लिए भारत के चारों दिशाओं में चार "पीठ' और चार "मीमांसा' स्कूल स्थापित किए गए थे। उसी "पीठ' और "मीमांसा' स्कूल के माध्यम से रूपांतरित किये गये इन विवादित ग्रंथों को आदि शंकराचार्य ने समाज में पौराणिक और सच्चा साबित करने के लिए अपनी जन्म तिथि को भ्रामक और हर समय का बनाया था। Sri Adi Shankaracharya, Sringeri Sharada Peetham, India, Biography of Sri Adi Shankaracharya, Sringeri Sharada Peetham, India, Shyama Kumar Chattopadhyaya (2000) The Philosophy of Sankar's Advaita Vedanta, Sarup & Sons, New Delhi.

भारतीय सभ्यता में आदि शंकराचार्य द्वारा प्रथम जगद्गुरू शंकराचार्य पीठ (Adi Shankara) की स्थापना की गयी थी। [इनका जन्म 788 ईस्वी में कालादी, चेर राज्य (इस समय केरल राज्य) मृत्यु 820 ईस्वी (उम्र 32 वर्ष) में केदारनाथ, पाल साम्राज्य (इस समय उत्तराखंड)]। केरल में त्रिशूर एक खूबसूरत प्रचीन शहर और केरल की सांस्कृतिक राजधानी है। नगर के मध्य में ही 9 एकड़ में फैला ऊँचे परकोटे वाला एक विशाल शिव

मंदिर है जिसे ''वडकुनाथन' कहते हैं। ''वडकुनाथन' से तात्पर्य ''उत्तर के नाथ' से है, जो ''केदारनाथ' ही हो सकता है। यहाँ ''आदि शंकराचार्य' की तथाकथित ''समाधि' भी बनी है और उसके साथ एक छोटा सा मंदिर भी है, जिसमें उनकी मूर्ति भी स्थापित है। उल्लेखनीय है कि ''आदि शंकराचार्य' की एक ''समाधि केदारनाथ मंदिर' के पीछे भी है। चौरीबारी हिमनद के कुंड से निकलती मंदाकिनी नदी के समीप, केदारनाथ पर्वत शिखर के पाद में, कत्यूरी शैली में निर्मित केदारनाथ मंदिर 3,562 मीटर की ऊँचाई पर अवस्थित है। पुरातत्व विभाग द्वारा इसे 1000 ईस्वी से 1200 ईस्वी के बीच निर्मित माना जाता है। यह मन्दिर एक छह फीट ऊँचे चौकोर चबूतरे पर बना हुआ है। मन्दिर में मुख्य भाग मण्डप और गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणा पथ है। बाहर प्रांगण में नन्दी बैल वाहन के रूप में विराजमान हैं। मन्दिर का निर्माण किसने कराया, इसका कोई प्रमाणिक उल्लेख नहीं मिलता है, लेकिन हाँ ऐसा कहा जाता है कि इसकी स्थापना आदि गुरू शंकराचार्य ने की थी।

इसी शंकराचार्य ने पूरे भारत में भ्रमण कर अपने विचारों के द्वारा झूठा ब्रह्म सूत्र, उपनिषद, अद्वैत वेदांत का प्रचार–प्रसार किया। इसके विस्तार हेतु पूरे भारत में शंकराचार्य ने चार पीठों की नींव डाली, जिसके माध्यम से पूरे भारत पर अपनी पकड़ को मजबूत बनाने का काम किया। इस पीठ को देश के चारों दिशाओं में निम्न प्रकार स्थापित किया गया था–पूर्व में (ओडिशा) जगन्नाथपुरी गोवर्द्धन पीठ, पश्चिम गुजरात में (द्वारिका) शारदामठ, उत्तर में बद्रिकाश्रम में ज्योतिर्पीठ, दक्षिण में श्रृंगेरी शंकराचार्यपीठ। वस्तुतः उस काल में फैले बौद्ध व जैन मत तथा अन्य प्राकृतिक संप्रदाय को ध्वस्त कर तथाकथित ब्राहम्ण और ब्राहम्णी मत के प्रचार हेतु इन पीठो की स्थापना की गई थी। साथ ही आम बोल चाल की भाषा से अलग संस्कृत को बढ़ावा दिया। पीठों के माध्यम से शंकराचार्य ने ब्रह्म सूत्र, उपनिषद, अद्वैत वेदांत के प्रचार हेतु ''मीमांसा स्कूल'' की स्थापना किया था। ''मीमांसा स्कूल' के माध्यम से कर्मकांड, ब्रह्म सूत्र, उपनिषद, अद्वैत वेदांत का प्रचार–प्रसार एवं अपनी उपस्थिति को प्रगाढ़ करने का

काम किया जाने लगा। साथ–ही–साथ "मीमांसा स्कूल' के माध्यम से सांख्य, वैशेषिक, बौद्ध और जैन धर्म व अन्य सनातन पद्धति के विचारों को कुचलना भी शुरू कर दिया गया था, जिसके परिणामस्वरूप 800 ईस्वी के पूर्व के जितने भी प्रकार के (जैसे – सांख्य, वैशेषिक, बुद्ध, जैन, अन्य) धार्मिक ज्ञानोपदेश विचारधारा थी, सभी का दर्दनाक अंत हो गया। आगे उसी की जगह पर आदि शंकराचार्य ने अपनी ''मीमांसा स्कूल'' और ''पीठ'' के माध्यम से ''अद्वैत वेदांत'' को आदि–अनंत पौराणिक एवं सनातन का बनावटी रूप देते हुए, ''अद्वैत वेदांत'' को समाज में स्थापित किया, जो आज सभी के सामने है और दिग्भ्रमित भी है।

(आधार – शंकर विजय – आदिशंकराचार्य जीवनी)

इन सब कारणों से पूरे भारतीय सामाजिक परिवेश और भारतीय सत्ता परिवेश दोनों पर शंकराचार्य के माध्यम से ब्राह्मणों का दबदबा और पकड़ बढ़ने लगा। अब ब्राह्मणों द्वारा जगद्गुरू शंकराचार्य पीठ और मीमांसा स्कूल के माध्यम से समाज में कर्म–कांड को बढ़ावा दिया जाने लगा। इन्हीं चार पीठों के अंदर अपनी सुख–सुविधा के हेतु "ईश्वर' के नाम पर देव–कन्या या देवदासी प्रथा की शुरूआत हुई, जिसमें महिलाओं के साथ धर्म के नाम पर पीठ में बिना वस्त्र के रहना एवं ईश्वर का दूत समझकर इन कर्मकांडियों के साथ यौनाचार करना जैसे अनेक कुकृत्य और अन्यायोप्रद क्रियायें शामिल थी।

यहीं से भारतीय समाज में शंकराचार्य द्वारा मनु स्मृति और पुराण जैसे अन्य ग्रंथों की रचना करने से लेकर बहुत सारे कर्मकांडों के द्वारा विकृति पैदा करना शुरू हुआ। (मनु स्मृति) मीमांसा दर्शन के द्वारा वैदिक दर्शन को प्राणतत्व और कर्मबंधन से जोड़ा गया। मीमांसा दर्शन के सूत्रकार "जैमिनी' और "कुमारिल भट्ट' हैं। (जैमिनी के जन्म की सत्यापित तिथि कहीं नहीं मिलती है, लेकिन हर जगह दावे के साथ यह जरूर मिलता है कि ये मीमांसा दर्शन के दार्शनिक और सूत्रधार थे। यानी कि जैमिनी का जन्म इसी समय का है। "जैमिनी', "कुमारिल भट्ट' और चारों पीठ के "पीठाचार्य'

ने मिलकर भारत के श्रुति स्मृति बातों के अंदर अपनी प्रमाणिकता बनाने हेतु सभी श्रुति स्मृति ज्ञान को परिवर्तित करते हुए समाज पर थोपने का काम किया, जिसका प्रभाव काफी समय से भारतीय श्रुति–स्मृति की बातों में देखने को मिल रहा है। "जैमिनी' ने अपने जन्म समय को दिग्भ्रमित करने के लिए अपनी लेखन कला के द्वारा अपने आपको "नारद' के जैसा हर काल में उपस्थित रहने वाला इंसान बना लिया था। इसलिए काफी लोग "जैमिनी' के जन्म समय को लेकर दिग्भ्रमित हैं। मीमांसा दर्शन में 16 अध्याय है, जिनमें प्रथम 12 अध्याय 'द्वादशलक्षणी' के नाम से जाना जाता है। इस दर्शन की सूत्र संख्या 2644 अधिकरण संख्या 909 है। जर्मन विद्वान "मैक्समूलर' का कहना है कि – यह दर्शन शास्त्र कोटि में नहीं आ सकता, क्योंकि इसमें धर्मानुष्ठान का ही विवेचन किया गया है। इसमें जीव, ईश्वर, बंधन, मोक्ष और उनके साधनों की कहीं भी विवेचना नहीं है। "मनुस्मृति' का प्रणयन किसने किया, यह कहना कठिन है। यह सत्य है कि मानव के आदि पूर्वज मनु ने इसका प्रणयन नहीं किया है। इसके प्रणेता ने अपना नाम क्यों छिपा रखा है, यह कहना दुश्कर ही है। हो सकता है कि इस ग्रन्थ को प्राचीनता एवं प्रामाणिकता देने के लिए ही इसे मनुकृत कहा गया हो – **"मैक्समूलर'**। "डॉ0 बुहलर' ने भी यही प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि "मनुस्मृति' या "मानव धर्मसूत्र' नामक ग्रन्थ कभी विद्यमान ही नहीं था। "मनुस्मृति' के माध्यम से शंकराचार्य ने स्वयं और अपने तथाकथित प्रतिनिधि ब्राह्मणों के द्वारा भारतीय समाज में धर्म के नाम पर लोगों को डराना और शोषण करना शुरू कर दिया, जो सबसे ज्यादा खतरनाक साबित हुआ।

इन तथाकथित ब्राह्मणों ने अपनी प्रमुखता को बढाने के लिए इस "मनुस्मृति' ग्रंथ के द्वारा भारतीय समाज के अंदर ईसा बाद 1000 ईस्वी से 1200 ईस्वी तक "वर्ण व्यवस्था' का निर्माण कर उसे काफी प्रचारित किया। वर्ण व्यवस्था के तहत ब्राह्मणों ने अपनी चाटुकारिता का परिचय देते हुए उस समय के सभी वंशों या परिवारों के राजा को "क्षत्रिय' वर्ण व्यवस्था में रखा। ये ब्राह्मण हर राजा के पास जाकर उसे क्षत्रिय शब्द का गौरव गाथा सुना–सुना कर सभी राजाओं को अपने भ्रम–जाल में फँसाने लगे। एक

समय ऐसा भी आया कि हर राजा ब्राह्मणों के मायावी जाल में फँसकर अपने—अपने दरबार में ब्राह्मणों को दरवारी (राजा के सलाहकार) के रूप में नियुक्त करना शुरू कर दिए। परिणामस्वरूप सभी राजा इस ब्राह्मण रूपी सियार के चंगुल में फँस गये। अब ये ब्राह्मण हर राजा से धीरे—धीरे अपना स्वार्थ साधना शुरू कर दिए, जिसका वर्णन आगे मिलेगा। इसके पहले जितने भी राजा हुए वो इस "क्षत्रिय वर्ण' व्यवस्था को जानते तक नहीं थे या उस समय ऐसी किसी भी व्यवस्था का जन्म ही नहीं हुआ था। वर्तमान में प्रचलित ब्राहम्णी धर्म की पहली बार नीवं इसी समय पड़ी और इसी समय ब्राह्मणी वर्ण व्यवस्था का निर्माण हुआ। जिसमें जितने भी डिग्री धारक थे वे अपने आपको ''ब्राह्मण वर्ण'' में रखने का फैसला लिया। इसके पहले के जितने भी ऋषि—मुनि हुए, वो इस ब्राह्मणी वर्ण व्यवस्था या ऐसी किसी भी पद्धति को जानते तक नहीं थे, क्योंकि उनके बच्चे स्वेच्छा से कर्म को चुनते थे। सबसे बड़ी बात कि इस काल के पहले किसी भी प्रकार की वर्ण व्यवस्था की चर्चा नहीं थी और न ही पढ़ने को मिलता है।

ब्राह्मणों के द्वारा भारत के अंदर सारे राजा—रजवाड़े को वर्ण व्यवस्था के तहत क्षत्रिय वर्ण में जोड़कर महिमा मंडित करने का काम जोड़ पकड़ने लगा था। अपने जीविकोपार्जन हेतु ब्राह्मणों ने उस समय के राजा—रजवाड़े के द्वारा सत्कर्म के नाम पर हर राजाओं से प्रत्येक जगह मंदिर का निर्माण करवाना शुरू कर दिया था। इसका स्पष्ट प्रमाण भारतीय पुरातत्व विभाग की घोषणा है, — भारत में जितने भी हिन्दू मंदिर हैं, उसमें सभी के सभी 1000 ईस्वी के बाद का बना हुआ प्रमाणित किया गया है (सिर्फ बौद्ध, जैन मूर्ति को छोड़कर)। इनमें कुछ पौराणिक और प्रसिद्ध मंदिरों की चर्चा मैं कर रहा हूँ, जो 1000 ईस्वी के बाद का बना हुआ है, जैसे—बुन्देलखंड के चंदेल वंश के राजा द्वारा मध्यप्रदेश में निर्मित मंदिर, अनंतवर्मन गंग (1125 ई0) द्वारा उड़ीसा का जगरनाथ मंदिर, राजा धंग देव द्वारा खजुराहो का मंदिर। राजा आल्हा के द्वारा मैहर मंदिर एवं पाल वंश के राजा नारायण पाल द्वारा देवघर शिव मंदिर की स्थापना की गई थी। उत्तरी और पूर्व भाग में अनेकों मंदिर जिसमें काली बाड़ी, कामरूप कामाख्या

प्रमुख हैं, बनवाये गये। (आधार – Jhunu Bagchi (1 January 1993). The History and Culture of the Palas of Bengal and Bihar, Cir. 750 A.D. – Cir. 1200 A.D. Abhinav Publications)।

12वीं सदी में राष्ट्रकूट वंश के शासकों ने पहाड़ी काटकर एलौरा के विश्वविख्यात कैलाशनाथ मंदिर का निर्माण कराया था। चालुक्य वंश के द्वारा अजंता गुफा मंदिर, रामप्पा मंदिर और विरूपाक्ष मंदिर का निर्माण कराया गया था। राजराजा प्रथम ने तंजौर में स्थित राजराजेश्वर मंदिर का निर्माण कराया था। होयसल वंश के द्वारा दक्षिण भारत में लगभग 1500 मंदिर बनवाये गये, जिनमें मुख्य हैं बेलूर मंदिर, रामेश्वरम् मंदिर, हैदराबाद के पास हलेबिड मंदिर। नटराज शिव की कांस्य प्रतिमा चोल शासकों के समय बनी प्रतिमाओं में सबसे विख्यात प्रतिमा थी। (आधार – भारतीय इतिहास की किताब) बौद्ध मूर्तियों के अलावा, काल्पनिक दुर्गा और सरस्वती के चित्र भी पाल राजवंश के शासन के दौरान निर्मित किए गए। पाल वंश के समय में भूमिच्छिद्रन्याया सिद्धांत के अनुसार पढ़े–लिखे डिग्रीधारी लांगों को जमीन का एक अंश उपहार दिया जाता था। (Krishna Chaitanya (1 January 1987). Arts of India. Abhinav Publications. P. 38)। आज के समय में इन सारे मंदिरों के ऊपर ब्राह्मणों के द्वारा सनातन और स्वम्भू निर्माण या अवतरित होने की कहानी समाज में प्रचारित (प्रचलित) है। ब्राह्मण बुद्धिजीवियों ने अपने स्वार्थ हेतु राजा–रजवाड़े से उस मंदिर के रख–रखाव हेतु काफी जमीन मंदिर के सुपूर्द करवाने का काम आरंभ करवा दिया था। उस मंदिर की जमीन को बाद में (भगवान की जमीन) ठाकुरवाड़ी या मठ की जमीन का नाम दिया गया। इस जमीन पर मंदिर की सेवा में लगे ब्राह्मणों का अधिकार रहता था, जिसके द्वारा ब्राह्मणों को मुफ्त में रोटी–कपड़ा और भारतीय समाज में सम्पन्नता व सर्वोच्च बनना और बनाना शुरू हो गया। मंदिर में कर्मकांड और पूजा–पाठ को ब्राह्मणों ने अपने आने वाले परिवार, बच्चे और पीढ़ी हेतु सुरक्षित करवाने का काम शुरू कर दिया। इसके लिए ब्राह्मणों ने समाज में हर लोगों के दिलो–दिमाग में झूठी बात बिठाने का काम किया। पूरे भारतीय समाज में प्रचारित और प्रसारित करा दिया कि कर्म–कांड या पूजा–पाठ ब्राह्मण या ब्राह्मण के बच्चों के द्वारा ही

हो सकता है, अन्य किसी भी ज्ञानी पुरूष से संपन्न नहीं हो सकता है। जो आज भी एक कहावत बनकर पूरे भारतीय समाज को मुँह चिढ़ा रहा है कि – ब्राह्मण मुखे सब पाख? चाहे वो ब्राह्मण शराबी हो, अनपढ़ हो, अज्ञानी हो अय्याश प्रवृत्ति का हो। इसी कुटिल बुद्धि के बल पर पूजा–पाठ कर्म–कांड में ब्राह्मणों का आरक्षण शुरू हो गया, जिसका दुषित फल आज भी समाज भुगत रहा है।

1000 ईस्वी से 1947 ईस्वी तक क्षुद्र और स्वार्थी बुद्धिजीवियों ने ब्राह्मण का चोला पहनकर भारतीय समाज में वर्ण, जाति, छोटा–बड़ा, ऊँच–नीच की घटिया व्यवस्था बनायी। आज के समय में रही–सही कसर उस ब्राह्मणी वंशानुगत आरक्षित व्यवस्था के तहत उनके उत्तराधिकारी कर्मकांडी ब्राह्मणों ने क्षुद्र, लोभी और स्वार्थी प्रवृत्ति द्वारा अपनी अज्ञानता और अशिक्षा के बल पर पूरे समाज को अपने अधकचरे जानकारी से गड्ढे में पहुँचाने का काम किया है।

आप ने ऊपर में लगभग 2500 वर्षों की भारतीय सत्ता व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था का अवलोकन किया, क्या आपको लगता है कि ऐसी किसी भी प्रकार की व्यवस्था प्राचीन काल में रही होगी?

इन दुबे और चौबे जैसे सरनेम वालों के अंदर अपनी कुटिल बुद्धि और ज्ञान की वजह से काम करने की प्रवृत्ति धीरे–धीरे खत्म होने लगी। ये सारे छ्दम ब्राह्मण मुफ्त की रोटी की जुगाड़ में भारतीय समाज के अंदर गिरावट का दौर शुरू करवाना चालू कर दिया। प्रथमतः मुफ्त की रोटी के लिए झूठे अन्धविश्वास और कर्मकांड को समाज के अंदर फैलाना शुरू कर दिया और द्वितीय उस समय में जितने भी भारत के अंदर राजा थे सबों को आपस में अपने स्वार्थहित में और अपने कुटिल ज्ञान–बुद्धि के बल पर लड़ाने का काम करने लगे।

इन तथा कथित नकली ब्राह्मणों के अंदर आज भी ये सारी प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं।

मैं सही कह रहा हूँ न!

आकलन नं0–05

पौराणिक मान्यताओं के आधार पर ब्रह्म पुराण और पंडितों की उक्तियाँ– भारतीय समाज पर पंडितों ने पोथी–पत्रा नामक हथियार को आधार बनाकर पूरे समाज पर एकाधिकार बना रखा है। पौराणिक मान्यताओं के आधार पर ब्रह्म पुराण और दन्त कथा के अनुसार ये पोथी–पत्रा (पंचाग) का निर्माण स्वयं ब्रह्मा ने द्वापर युग और त्रेता युग के पहले सभ्यता और सृष्टि के प्रारम्भ में किया था। ब्रह्म पुराण के अनुसार पोथी–पत्रा पर सिर्फ ब्राह्मणों का अधिकार होगा और इसको देखकर सिर्फ ब्राह्मण ही पूरे समाज का मार्ग दर्शन करेगा। आखिर ये पोथी–पत्रा (पंचांग) का सच क्या है?

आईये जानने का प्रयास करते हैं!

जिस प्रकार से राजपूत और राजा का सम्बन्ध बहुत ही कम दिनों का रहा है, उसी प्रकार पंडित और पंचांग का भी सम्बन्ध बहुत ही कम दिनों का रहा है। अपने भारत देश में आज के समय में दो प्रकार के हिन्दी वर्ष का पंचांग और एक अंग्रेजी (ईस्वी) कैलेंडर का प्रचलन है।

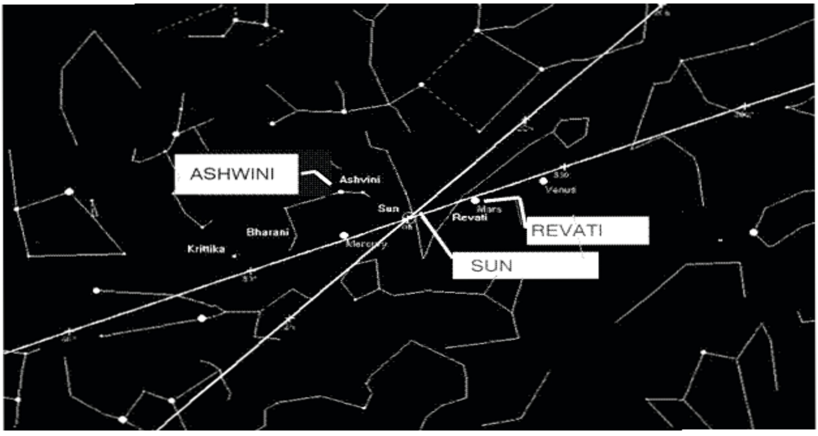
पहला अंग्रेजी कैलेंडर (रोमन) ईसा मसीह के जन्म से शुरू होता है, जो पूरे विश्व में मान्य है। इसलिए विश्व में समय की गणना ईसा के जन्म से पूर्व या ईसा के जन्म के बाद जैसे शब्दों में की जाती है।

द्वितीय भारत में हिन्दी पंचांग दो प्रकार के हैं, जिसमें एक का प्रचलन बहुतायत से मिलता है। आईये हमलोग पहले इस हिन्दी पंचांग के बारे में विस्तारपूर्वक जानकारी लें कि आखिर यह कब से भारतीय समाज में आया? कैसे आया? और कौन लाया?

भारत का पहला पंचांग ''शक संवत्' के नाम से प्रचलित है, जिसका उद्‌भव ईसा से 78 वर्ष बाद ''शक वंश' के समय सम्राट ''हेरिओस' ने अपने वंश के नाम पर शुरू किया था। लेकिन इसमें काफी त्रुटि होने की वजह से भारतीय समाज में ज्यादा प्रचलित नहीं हो सका। सिर्फ आजादी के बाद से आजाद भारत की नेहरू सरकार ने अंग्रेजों से नीचा दिखने और

नीचा रहने की वजह से सरकारी आदेश में एक अंग्रेजी कैलेंडर “ईस्वी' और दूसरे हिन्दी पंचांग “शक संवत्' को मान्यता सरकारी तौर पर दे रखा है। “शक संवत् पंचांग' “ईस्वी' कैलेंडर से हमेशा 78 वर्ष पीछे रहता है।

द्वितीय भारतीय सभ्यता और संस्कृति में सबसे ज्यादा उत्तम और प्रचलित पंचाग “विक्रम संवत्' है, जो ईसा बाद 375 ईस्वी से 415 ईस्वी के बीच किसी समय में “गुप्त वंश' के शासक सम्राट “चन्द्रगुप्त–II' ने शुरू करवाया था। सम्राट “चन्द्रगुप्त–II' का दूसरा नाम “विक्रमादित्य' था। इस समय भारत का स्वर्णिम काल चरम उत्कर्ष पर था। ज्ञान–विज्ञान से लेकर सांस्कृतिक रूप से भारत बिल्कुल ही विश्व गुरू की राह पर था। अब सवाल उठता है कि सम्राट “विक्रमादित्य' ने विक्रम संवत् पंचांग को ईसा से 57 वर्ष पूर्व क्यों शुरू करवाया? यह उन दिनों में, एक खगोलीय घटना के आधार पर किया गया था। मीन के लिए मेष राशि के बीच विषुव के संक्रमण (नक्षत्रों के अनुसार–मीन के लिए मेष राशि –संकेत के बीच संक्रमण से मेल खाती है, जो 57 ईसा पूर्व में रेवती को अश्विनी – यह नक्षत्र के बीच संक्रमण था – जवाब था)। एक सुरक्षित घटना रूप में सम्राट “विक्रमादित्य' के दरबार में इन खगोलविदों ने निष्कर्ष निकाल लिए थे कि इस संक्रमण, विषुव में सूर्य की जो स्थिति है उससे स्पष्ट रूप से इन दो नक्षत्रों (अश्विनी और रेवती) के बीच, विषुव पर, सूरज स्थित है। अंत में इस आँकड़े को देखकर और गणना के द्वारा उस प्रश्न का जवाब आ गया था। जो बाद में तार्किक रूप से एक खगोल विज्ञान और कैलेंडर के साथ जुड़ गया है।



तालिका 1 —

तालिका 2 — हिन्दी महीना, ऋतु, पंचांग

क्र. स.	हिन्दी महीना	Western Months	हिन्दी ऋतु	Western Name of Season
1.	चैत्र	मार्च–अप्रैल	बसंत	Spring
2.	वैशाख	अप्रैल–मई	बसंत	Spring
3.	ज्येष्ठ	मई–जून	ग्रीष्म	Summer
4.	आषाढ़	जून–जुलाई	ग्रीष्म	Summer
5.	श्रावण	जुलाई–अगस्त	वर्षा	Monsoon
6.	भाद्रपद	अगस्त–सितंबर	वर्षा	Monsoon
7.	आश्विन	सितंबर–अक्टूबर	शरद	Autumn
8.	कार्तिक	अक्टूबर–नवंबर	शरद	Autumn
9.	मार्गशीर्ष	नवंबर–दिसंबर	हेमन्त	Winter
10.	पौष	दिसंबर–जनवरी	हेमन्त	Winter
11.	माघ	जनवरी–फरवरी	शिशिर	Dewey

इस पंचाग को बनाते समय खगोल शास्त्री एवं वैज्ञानिक बंधुओं ने इसकी शुरूआत का समय मीन राशि और मेष राशि के बीच विषुव के संक्रमण और दो नक्षत्रों (अश्विनी और रेवती) के बीच, विषुव पर सूरज की स्थिती के मिलान को उचित माना था। इसी वजह से ईस्वी सन से 57 वर्ष पूर्व राशि, नक्षत्रों, सूर्य, चन्द्रमा के संयोग को सही मानते हुए ''विक्रम संवत्'' का समय सुनिश्चित किया। इससे''विक्रम संवत्'' का समय ज्ञात हो जाता है।

संदर्भ आपलोग देख सकते हैं –

E.Burgess, 1977, "Translation of the Suryasiddhanta: A Textbook of the Hindu Astronomy with Notes and an Appendix, Indological Book House, Delhi, pp 115-120.

G.R. Kaye, 1981, "Hindu Astronomy: Ancient Science of the Hindus "Cosmo Publication", New Delhi, India, pp 119.120.

C. Payne – Gaposchkin and K. Harmundanis, 1970, "Introduction of Astronomy", Prentice Hall Inc, New Jersy, U.S.A, Chs. 1 to 7.

B.D. Sastri and L. Wilkinson, 1974, "The Surya Siddhanta", Philo Press, Amsterdam, The Netherlands, Chs. I, II and III.

G.G. Joseph, 2000, "The Crest of the Peacock: Non-Europeans Roots of Mathematics", Princeton, U.S.A, Chs. 8 and 9.

S. Wolpert, 1993 "A New History of India", Oxford University Press, New York, U.S.A.

इस पंचाग को सम्राट ''चन्द्रगुप्त–II'' ने अपने दूसरे प्रसिद्ध नाम ''विक्रमादित्य'' की वजह से ''विक्रम संवत्'' का नामकरण किया, ये सारी बातें पंचांग की शुरूआत या उद्भेदन में वर्णित है। परन्तु पौराणिक मान्यताओं के आधार पर आप ''ब्रह्म पुराण'' जब पढ़ेंगे तब आप उसके अंदर लिखे हुये शब्दों में पायेंगे कि ''विक्रम संवत्'' पंचांग स्वयं भगवान ब्रह्मा जी ने सृष्टि की शुरूआत में अपने हाथों से रचित किया था और इसको देखने एवं रखने का अधिकार सिर्फ पंडितों यानि ब्राह्मणों को है।

अब सच आपके सामने है।

1) पंचाग बनाने वाले गुप्त वंशी सम्राट "चन्द्रगुप्त–II" (विक्रमादित्ये) जिन्होंने स्वयं अपने नाम से इस पंचांग का नामकरण किया।

2) यह पंचांग ईस्वी सन् बाद 375–415 वर्ष के बीच में बना, जिसका प्रारंभिक काल किसी ग्रह–नक्षत्र की गणना वश ईसा से 57 वर्ष पूर्व का है।

3) गुप्त वंश के समय में ब्रह्मा, ब्राह्मण, राजपूत जैसे शब्दों की उत्पत्ति नहीं हुई थी।

ईसा के 1000 ईस्वी के बाद से ब्राह्मणों ने इस पंचांग पर स्वयं का एकाधिकार बताकर समाज में स्वयंभू श्रेष्ठ बनने की कोशिश किए, लेकिन सच आपके सामने कुछ और ही है। विक्रम संवत् पंचांग बनाने से लेकर 1000 ईस्वी तक इस प्रजाति का दूर–दूर तक इससे कोई संबंध नहीं था। फिर भी ब्राह्मणों ने 1000 ईस्वी के बाद झूठा **"ब्रह्म पुराण"** नामक ग्रन्थ की रचना कर उसमें **"विक्रम संवत्"** पंचांग को स्वयं ब्रह्मा के द्वारा रचित बताकर तथा ब्रह्म पुराण में इस **"विक्रम संवत्"** को द्वापर युग या त्रेता युग का बताकर समाज के बीच में झूठा विद्धान बनने का काम किया।

अब आप खुद ही आकलन करें कि 1000 ईस्वी के बाद इन ब्राह्मणों ने कैसे अपने झूठे पुराण लेखन और दन्त कथा के माध्यम से समाज के बीच में भ्रम फैलाया था?

परंतु सच आपके सामने है।

आकलन नं0–06

उपरोक्त समस्त घटनाक्रम लगभग 1000 ईस्वी के आगे से शुरू होता हैं। भारत की सत्ता व्यवस्था इन धर्माचार्यों के द्वारा संचालित होने लगी थी। इन धर्माचार्यों के अंदर लोभी और व्यभिचारी प्रवृत्ति पनपने की वजह से भारतीय सत्ता व्यवस्था कमजोर पड़ रही थी। भारत में तुर्क मुस्लिम शासक या मुस्लिम लुटेरों का आना–जाना शुरू हो गया था। तुर्कों के द्वारा प्रलोभन दिए जाने के चलते तुर्कों को भारत आने–जाने में ब्राह्मण और राजपूतों के द्वारा उन्हें भरपूर सहयोग मिलने लगा था। इसका सीधा प्रमाण यह है कि

जिस मंदिर की तिजोरी या दरवाजा किसी से टूट नहीं सकता था, उसे तुर्क आकर तोड़कर खजाना लूट लेता था। जैसे—सोमनाथ मंदिर की अटूट सुरक्षा रहने के बाद भी वहाँ की स्वर्ण जड़ित मूर्ति और तिजोरी को लूटना। दूसरा—जिस राज्य के अंदर हजारों—हजार घुड़सवार सैनिक थे, उसकी सुरक्षा व्यवस्था पर कोई आक्रमण करने की सोच भी नहीं सकता था। लेकिन उस राज्य पर मात्र दो—चार हजार सैनिक लेकर मुस्लिम आक्रमणकारियों का आना और उस राजा का कत्ल कर सत्ता भी छीन लेना जैसी घटनाएँ अनेक शंकाए उत्पन्न करती है। जैसे—पृथ्वीराज चौहान को मरवाने में जयचंद ने, राणा प्रताप को मरवाने में मान सिंह, जैसे अनेकों नाम हैं, जिन्होंने मुगलों का साथ दिया। ये स्पष्ट दर्शाता है कि देश के गद्दार या चाटुकार आप जो भी बोलें, ने अपनी मुफ्त की रोटी के प्रयास में पड़ोसी राज्यों से आपसी दुश्मनी साधने के लिए तुर्कों का भरपूर साथ दिया।

भारत के अंदर कुछ—कुछ जगहों पर मुस्लिम और राजपूत राजाओं की शासन सत्ता चल रही थी। ब्राह्मण दोनों के यहाँ दरबारी का काम करने लगा और अपनी रोटी सेंकने का काम करने लगा। लगभग 1500 ईस्वी आते—आते भारत की सत्ता पूरी तरीके से मुगलों के अधीन हो गयी थी। पहला मुगल शासक ''बाबर'' बना, जिसने बिल्कुल ही आतातायी के रूप में भारतीय समाज विरोधी काम किया। भारत के अंदर जितने भी राजा (राजपूत) और दरबारी, शंकराचार्य या उपाधिधारक (ब्राह्मण) हुए, सबों ने अपने—अपने तरीके से मुस्लिम शासकों के सामने समर्पण किए।

प्रथम तथ्य – उस समय के वैसे शासक (राजा) जो अपने आप को सिर्फ राजपूत राजा समझते थे, वे अपनी सत्ता या राजपाट बचाने के लिए अपनी बेटी—रोटी का सम्बन्ध मुगलों से बनाना शुरू कर, मुगलों के नजदीक पहुँच गए, जिससे उस राजपूत क्षत्रिय राजा की सत्ता व्यवस्था मुगलों के अधीन जाकर बच गयी थी।

द्वितीय तथ्य – उस समय के दरबारीगण, शंकराचार्य और उपाधिधारक ब्राह्मण वर्ग, वे सभी एक मत होकर उस मुस्लिम शासकों के पास जाकर

ब्राह्मण वर्ण भारत में कैसे प्रकट हुआ या कैसे आया। इसके बारे में झूठी कहानी बताने लगे और ब्राह्मणों ने मुगलों को अपनी ओर आकर्षित करने हेतु पहली बार आर्य और अनार्य का नामाकरण कर रंगवा सियार के जैसे अपने खाल को रंगना शुरू कर दिया। सारे शंकराचार्य और ब्राह्मण मुस्लिम शासकों के दरबार में जाकर दावे से कहना प्रारम्भ कर दिए कि जिस प्रकार आप (मुगल) हुजूर बाहर से आकर भारत पर कब्जा किये हैं, उसी प्रकार हमारे पूर्वज भी आर्य थे और वे बाहर से आकर इस भारतीय हिन्दू अनार्य समाज पर कब्जा कर के रह रहे थे और इनको मूर्ख बनाकर अपना जीविकोपार्जन कर रहे हैं। अब आप बतायें हम दोनों में कोई अंतर हुआ क्या? आप भी विदेशी और हम भी विदेशी। उस समय दिखावे के लिए ब्राह्मण समाज किसी भी हिन्दू यानि अनार्य का छुआ हुआ खाना नहीं खाता था। इस प्रकार ब्राह्मणों ने ''बाबर'' के साथ मिलकर अपने–आप को हिन्दू से अलग करते हुए आर्य ब्राह्मण बनकर समाज विरोधी काम में लग गया।

इसी समय मूल बाल्मीकि कृत रामायण को अकबर के दरबारी टोडरमल के मित्र तुलसीदास ने अपनी क्षुद्र भाषा और कुटिल विवेक के द्वारा तुलसीदास कृत रामायण बनाकर जन–मानस में प्रचारित और प्रसारित करने का काम किया। बाल्मीकि कृत रामायण और तुलसीदास कृत रामायण को अगर आप गौर से अध्ययन कर तुलनात्मक दृष्टि से विश्लेषण करेंगे तब आप स्वयं पायेंगे कि तुलसीदासकृत रामायण नहीं ये रावणायण है, जो समाज में छोटा–बड़ा, ऊँच–नीच की भावना और वैमनस्यता फैलाने वाला है। ऐसे अनेकों उदाहरण हैं, जहाँ ब्राह्मणों के द्वारा मूर्ख बनाने की परम्परा पहले से चली आ रही थी।

तुलसीदास एवं अन्य ब्राह्मण लेखकों द्वारा रामायण और अन्य धार्मिक ग्रंथों में विद्वेष पूर्ण बातों की पुनः रचना की गई और कई अन्य काल्पनिक और झूठी कहानियों के आधार पर पुराणों की रचना की गई, जिनमें कुछ छन्दों की चर्चा शुरूआत में ही की गयी है। लेकिन फिर भी मैं एक छंद की चर्चा कर रहा हूँ, कि कैसे सभ्य समाज को मूर्ख बनाकर ब्राह्मणों ने अपनी बुद्धिमता और प्रधानता को बनाये रखा है।

तुलसीदास ने लिखा है –

"पूजहिं विप्र सकल गुण हीना...!

शूद्र न पूजहिं वेद प्रवीणा...!"

अर्थात् ब्राह्मण चाहे व्यभिचारी हो, भ्रष्टाचारी हो, जुआरी हो या शराबी हो उसकी पूजा ही होनी चाहिए.. पिछड़े – दलित चाहे कितने भी विद्वान हों, चरित्रवान हों उनकी पूजा नहीं हो सकती।

कपटी कायर कुमति कुजाती।

लोक, वेद बाहर सब भांति।।

तुलसी दास ने रामायण में मंथरा नामक दासी को नीच जाति वाली कहकर अपमानित किया है। देखें पेज 338, दोहा 12(2) अ0का0।

इस काल के पहले ऐसे किसी भी काल्पनिक ग्रंथों की चर्चा नहीं मिलती है। इन मनगढ़ंत ग्रंथों के आधार पर समाज पर जबरन वर्ण व्यवस्था और कर्मकांड थोपना शुरू कर दिया गया। साथ ही सारे विवेकहीन ग्रंथों को ब्रह्मा के द्वारा उत्पत्ति से जोड़कर सनातन और सृष्टि के समय का प्रचारित और प्रसारित करने का काम शुरू किया गया, जिसमें वे काफी हद तक सफल भी हुए।

क्या आपको ईसा पूर्व 544 ईस्वी से ईसा बाद 800 ईस्वी तक के राजा (जैसे–सम्राट बिम्बिसार, सम्राट अजातशत्रु, सम्राट चन्द्रगुप्त, सम्राट अशोक, बृहद्रत मौर्य, समुद्रगुप्त, सम्राट हर्षवर्द्धन तथा अन्य) की सत्ता व्यवस्था और उनकी कार्य पद्धति को देखकर ऐसा महसूस होता है?

राजपूतों के द्वारा समाज में अत्याचार करने और जबरन मुगलों का अनुयायी बनाने का कार्य संपन्न किया गया।

अब आप स्वयं ही सोचिये?

क्या मैं सही कह रहा हूँ और क्या आप मेरी बातों से सहमत हैं?

850 ईस्वी से पूर्व, भारत की राजसत्ता एवं सांस्कृतिक सत्ता को देखकर किसी भी प्रकार के स्मृति पुराण या मनु स्मृति के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता था। भारतीय इतिहास के अंदर उस समय को सिर्फ और सिर्फ स्वर्ण काल ही बोला गया है क्योंकि उस समय के प्रामाणिक श्रृति–स्मृति ग्रंथों के अंदर जिस भी ग्रन्थ की चर्चा मिलती थी, वे सिर्फ जैन और बौद्ध ग्रन्थ थे। वर्तमान के किसी भी ग्रंथों का उल्लेख उस काल में नहीं मिलता है। उस समय किसी भी प्रकार की जातियाँ जैसे ब्राह्मण और राजपूत या अन्य जातियों की चर्चा नहीं मिलती है। अगर मिलती है तो सिर्फ वंश और वंश परम्परा तथा कर्म सिद्धांत।

आज हमलोग जो वेद प्ढ़ रहे हैं, वो आज के सम्पादित वेद हैं, और ये बातें आप भी स्वयं वेदों में देख सकते हैं –

साम वेद के पेज नम्बर 23 पर आप खुद देख सकते हैं। (मैक्समूलर द्वारा सम्पादित है)।

पाठ के संदर्भ में मैक्समूलर का कथन :

''प्रस्तुत संहिता में मंत्रों का नितांत परिशुद्ध पाठ छापा गया है। इस दिशा में गवेषणात्मक विचार करने पर कई संहिताओं में कुछ अंतर देखने को मिला है। आजकल की उपलब्ध संहिताओं में, दो संहिताएँ अत्यधिक प्रामाणिक मानी गई हैं – एक है स्वाध्याय मण्डल पारडी, बलसाड़ से प्रकाशित, दूसरी है – वैदिक यंत्रालय, अजमेर से प्रकाशित, किन्तु कुछ मंत्रांश दोनों में अलग–अलग हैं।

ऐसी स्थिति में हमने मैक्समूलर द्वारा संपादित, अक्टूबर 1849 ई0 में आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी से प्रकाशित प्राचीन पाठ को प्रामाणिक माना है और उसके अनुसार अपने पाठ को शुद्ध करके छापा है।

आशा है, जिस भाव से यह प्रयास किया गया है, उसे उसी रूप में ग्रहण करते हुए पाठक–गण, इससे विशेष लाभ प्राप्त कर सकेंगे।

''भगवती देव शर्मा''

आज हम और आप जो भी देख रहे हैं या समाज के लोग समझ रहे हैं, यह सारा का सारा आधुनिकाल के इतिहासकारों की देन है, जिन्होंने विगत 300 वर्षों के अंतराल में भारतीय इतिहास के बारे में और अपने स्वार्थ हेतु किताबों के अंदर गलत तरीके से लिखित और परिभाषित करने का काम किया है। इसके परिणामस्वरूप आज का समस्त समाज दिग्भ्रमित और विकृत हो गया है। आज प्रामाणिक पुराणों की संख्या 18 है। 11 वाँ पुराण भविष्य पुराण है जिसमें ब्रिटिश काल की महारानी विक्टोरिया का इतिहास है। अब यदि 11 वाँ पुराण ब्रिटिश काल का है तब 18 वाँ पुराण कब का होगा? सीधा जवाब है कि ब्रिटिश काल का या उसके बाद का लिखा हुआ होगा। फिर वेद युग में वेद व्यास 18 पुराण कैसे लिख दिए? कब के हैं वेद व्यास?

राजपूत काल के बाद मुस्लिम शासन काल में जब भी आप किसी राजपूत या मुगल शासक के दरबारी का जिक्र करेंगे तब आप उसमें किसी–न–किसी उस समय के चापलूस या कुटिल बुद्धिजीवी ब्राह्मण को जरूर ही पायेंगे। उन्हीं दरबारी ब्राह्मणों के घर में एक नये वंश की उत्पत्ति हुई, जिसे ब्राह्मणों ने पूरे भारत के अंदर अपनी कुटिल बुद्धिमता का इस्तेमाल करते हुए अलग–अलग जाति सूचक नामों के द्वारा समाज में पदस्थापित किया।

प्रथम – (पूर्वी भारत) जिसका नामकरण उत्तरी भारत के गंगा के मैदानी भागों वाला इलाका यानि आज के इलाहाबाद के गंगा संगम से लेकर भागलपुर गंगा नदी के दोनों छोर में पड़ने वाले क्षेत्रों में ब्राह्मणों ने अपनी बुद्धिमता और चापलूसी का परिचय देते हुए बादशाह से अपने पुत्र के जीविकोपार्जन हेतु भूमि उपहार में दिलवाते हुए उसको अपने से अलग करते हुए एक नयी उपजाति सूचक नाम के साथ ''भूमिहार'' के रूप में स्थापित किया।

दूसरा – (मध्य भारत) भारत के मध्य भाग में शासकों के दरबार में ब्राह्मणों ने अपनी बुद्धिमता और चापलूसी का परिचय देते हुए वंशजों को अपने बादशाह से

जीविकोपार्जन हेतु संपत्ति दिलाते हुए अपने आप से त्याग दिया जो आगे जाकर एक नयी उपजाति "त्यागी" के साथ समाज में स्थापित हुआ।

तीसरा – (दक्षिण मध्य भारत) भारत के दक्षिणी पश्चिमी शासकों के दरबारों में ब्राह्मणों ने अपनी बुद्धिमता और चापलूसी का परिचय देते हुए अपने बादशाह से जीविकोपार्जन हेतु गाँव की लगान वसूली (चाकरी) का अधिकार प्राप्त करते हुए अपने वंशजों को एक नयी उपजाति "चरक" बनाकर समाज में स्थापित किया।

इन तीन नयी विकसित जातियों को आप भी जानते और समझते हैं। अभी कुछ वर्ष (1995 ईस्वी के आस–पास) पहले की घटना है कि ये तीनों जातियाँ भूमिहार, त्यागी और चरक ने मिलकर बिहार प्रदेश में स्थित राजगृह में एक अधिवेशन किया था और उस अधिवेशन में इन तीनों ने मिलकर अपने आपको ब्राह्मण की उप–जाति के रूप में स्थापित करते हुए अपने आपको ब्रह्मर्षि के नाम से सुशोभित किया था। साथ ही साथ अपने–अपने क्षेत्र में तीनों नामों के साथ ब्रह्मर्षि (ब्राह्मण) शब्द के इस्तेमाल पर काफी जोर दिया था।

आप अगर ध्यान से इन तीनों जातियों (भूमिहार, त्यागी, चरक) का अध्ययन करेंगे तब पायेंगे कि इस समाज के अंदर तीन मुख्य विशेषताएँ उपस्थित हैं। (1) ब्राह्मण के जैसा कर्मकांडी (2) हमेशा सत्ता के साथ या राजदरबार में दरवारी जैसे चिपके रहना (3) सामंतवादी शासकों के जैसी झगड़ालू प्रवृत्ति।

क्या मैं सही कह रहा हूँ?

1750 ईस्वी आते–आते भारत की सत्ता व्यवस्था मुगलों के हाथों से खिसक कर अंग्रजों के हाथों में जा रही थी। अब भारत के अंदर बचे हुए ब्राह्मण, राजपूत और मुस्लिमों (बहुत से राजपूत जिन्होंने अपना हिन्दू धर्म छोडकर मुस्लिम धर्म कबूल कर लिया था) के सामने मुगलों को छोड़कर अंग्रेजों की जी हुजूरी करना मजबूरी बन गयी थी, जिसकी वजह से ब्राह्मण

और राजपूतों ने अपनी वाह–वाही और पकड़ मजबूत करने हेतु अंग्रेजों के सामने अपनी 700 वर्षों की बनायी हुई खोखली वर्ण व्यवस्था और जातीयता की कमजोरी बताने का काम शुरू कर दिया। अंग्रेजों को बगैर मेहनत किये ही यहाँ कि सामाजिक कमजोरी का पता चलना भी शुरू हो गया। अंग्रेजों ने भारतीय सामाजिक कमजोरी और जातीय विभक्ति का पता लगाने के लिए भारत में पहली बार ब्राह्मणों और राजपूतों के सहयोग से ब्रिटिश गवर्नर जनरल ''लॉर्ड मेयो'' (1872 ई0) ने प्रथम जाति आधारित जनगणना करवाया। अब अंग्रेजों को भारत पर सत्ता प्राप्ति के साथ साथ ब्राह्मणों और राजपूतों के सहयोग से ईसाई धर्म प्रचार करने का रास्ता भी दिखने लगा। (जिसकी चर्चा आपको आगे मिलेगी)। भारत के अंदर मुगल शासकों के समय मुद्रणालय (छापाखाना) की संख्या बिल्कुल ही नगण्य थी। मुगल शासकों के समय में सिर्फ उर्दू भाषा के मुद्रणालय थे, वो भी सिर्फ अपनी सरकारी कागजों की ही छपाई का काम करता था। लेकिन ''लॉर्ड चार्ल्स मेटकॉफ'' ने भारत की जनता हेतु मूल भाषा संस्कृत और देवनागरी लिपि में और सरकारी काम हेतु अंग्रेजी भाषा में पहली बार भारत में मुद्रण और प्रकाशन का काम स्वतंत्र रूप से हर जगह करवाने का कार्य किया। भारत में प्रथम सार्वजनिक प्रकाशन अंग्रेजों के द्वारा 1780 ईस्वी में आरम्भ हुआ था। इसलिए ''लॉर्ड चार्ल्स मेटकॉफ'' को भारतीय प्रेस का जन्मदाता कहा जाता है। भारतीय समाज की इसी कमजोरी का फायदा उठाने के लिए अंग्रेजी सरकार ने अंग्रेज विद्वान ''लॉर्ड मैकाले'' को भारत बुलाया। लॉर्ड मैकाले ने भारत आकर सबसे पहले यहाँ के ब्राह्मणों के द्वारा संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की। ''लॉर्ड मैकाले'' ने अपने ज्ञान रूपी अस्त्र से भारत के अंदर धार्मिक ग्रंथों के माध्यम से समाज में तबाही मचाने का काम करने लगा। सबसे पहले लॉर्ड मैकाले ने यहाँ के धार्मिक ग्रंथों के अंदर छेड़–छाड़ कर उन्हें समाज विरोधी बनाया, जिससे की समाज के अंदर धार्मिक ग्रंथों से दूरी बननी शुरू हो जाय। लॉर्ड मैकाले ने अपने कुटिल ज्ञान के बल पर ब्राह्मणों से मिलकर कुछ नये ग्रंथों की रचना भी कर डाली। इन सारे ग्रंथों को लॉर्ड मैकाले ने छापाखाने के माध्यम से संस्कृत, देवनागरी और अंग्रेजी भाषा में

मुद्रित कर समाज में सनातन व प्राचीन धर्म ग्रन्थ के रूप में स्थापित और प्रकाशित करवाया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना पंडित मदन मोहन मालवीय द्वारा सन् 1916 में की गई थी। पर इस विश्वविद्यालय के मूल में डॉ0 एनी बेसेन्ट द्वारा स्थापित और संचालित सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज की प्रमुख भूमिका थी। बनारस संस्कृत विश्वविद्यालय का संस्थापक मूल रूप से ''जोनाथन डंकन'' था। अंग्रेजों ने मनोनुकूल ब्राह्मणी ग्रन्थ को मुद्रित करवाने हेतु अपनी देख–रेख में गीता प्रेस की स्थापना 1923 में सेठ जय दयाल गोयंनका द्वारा करवायी थी।

अब इन ग्रंथों के माध्यम से अंग्रेजों ने ब्राह्मणों के द्वारा भारतीय समाज में विष–वमन या जहर फैलाने का काम जोर–शोर से करवाया, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय समाज के अंदर काफी बड़ी खाई पैदा हो गयी थी। हर तरफ छोटा–बड़ा, छूत–अछूत का बोल–बाला शुरू हो गया। भारतीय समाज के अंदर इस छूत–अछूत की चर्चा तेजी से बढ़ती चली गई, जिसका फायदा अंग्रेजों ने भी काफी अच्छे ढंग से उठाया। अंग्रेज लोग एक तरफ ब्राह्मणों के द्वारा समाज में छूत–अछूत का प्रचार काफी जोरों से करवा रहे थे और दूसरी तरफ अपने आपको अछूत समझने वाले समाज के साथ अपनी हमदर्दी दिखाकर या प्रलोभन देकर ईसाई बनाने का काम भी करने लगे थे। अब अंग्रेजों की सत्ता व्यवस्था और ईसाई धर्म प्रचार की व्यवस्था दोनों ही काफी अच्छे तरीके से चल निकली।

इन्हीं सब जी हुजूरी को देखते हुए अंग्रेजी सरकार ब्राह्मणों और राजपूतों को अपने अधीन छोटे–छोटे पदों पर नौकरी में रखने लगी। ब्राह्मण और राजपूतों ने भी इस नौकरी में परिवारवाद का भरपूर फायदा उठाया। फलस्वरूप आपको अंग्रेजों के समय से ही नौकरी में ब्राह्मण और राजपूतों की सर्वाधिक संख्या देखने को मिलेगी।

क्या मैं सही कह रहा हूँ?

अब आप स्वयं ही समझ सकते हैं कि उस काल में कौन कैसा था?

आकलन नं0—07

1000 ईस्वी के बाद से कुछ राजाओं का नाम राजपूत सूचक जाति या क्षत्रिय सूचक जैसी वर्ण व्यवस्था में मिलना शुरू हुआ। लेकिन इसमें कुछ शासक ऐसे भी मिलेंगे जिन्होंने दूसरे राजाओं के साथ अपनी बेटी—रोटी या कुछ अन्य सामाजिक सम्बन्ध तो बनाये, परन्तु अपने आपको उस राजपूत जाति और क्षत्रिय वर्ण से दूर रखा। लेकिन बाद में इनके कुछ उत्तराधिकारी या वंशज अपनी अमीरी और सत्ता सुख के कारण रास्ता भटक कर अपने मूल पारिवारिक आधार को छोड़ दिए और अपने आप को राजपूत सम्बोधित करवाने लगे।

राजपूत जाति और क्षत्रिय वर्ण से दूर रहने वाले शासकों के उदाहरण :—

(1) राजा आल्हा— राजा आल्हा की शादी नैनागढ़ (उत्तराखण्ड) के राजा राघोमच्छ की बेटी राजकुमारी सोनवती (सुनवा) के साथ हुई थी। राजा आल्हा की माँ दो बहनें थीं। एक का नाम दिवला और दूसरे का नाम मलना था। दिवला का पुत्र आल्हा और मलना के पुत्र का नाम ब्रह्मजीत था। ब्रह्मजीत की शादी राजा पृथ्वीराज चौहान की बेटी बेला के साथ हुई थी। राजा आल्हा ने ही मैहर मंदिर की स्थापना की थी। सबसे बड़ी बात है कि राजा आल्हा चंदेल वंश से सम्बन्ध रखते थे। आगे चलकर कुछ चंदेल वंशी अपने आप को राजपूत कहलाने में गर्व महसूस किये लेकिन राजा आल्हा ने अपने आपको सिर्फ राजा या चंदेल वंश तक ही सीमित रखा। आज भी राजा आल्हा का वीर रस (विरहा) पूरे चंदेल शासन के क्षेत्र या महोबा या बुंदेलखंड की सीमा में प्रसिद्ध है। आज अधिकतर चंदेल वंशी राजा आल्हा के वंशज मुख्य रूप से वनाफर और दुसाध के नाम से अनुसूचित जाति के अंतर्गत आते हैं।

(2) राजा लखुजी जाधव—राजा लखुजी जाधव जी महाराष्ट्र के अहमद नगर क्षेत्र के राजा हुए और उनकी पुत्री जीजा बाई की शादी शाह जी राजे भोसले से हुई और बाद में जीजा बाई को राज माता की उपाधि मिली। उन्हीं

के घर में एक पुत्र रत्न का जन्म हुआ, जो आगे चलकर क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए मुगलों और ब्राह्मणों से सामाजिकता की रक्षा हेतु लंबी लड़ाई लड़ा और सामाजिक समरसता के झंडा को ऊँचा किया। लेकिन उन्होंने अपने आप को राजपूत कहलाना पसंद नहीं किया। सिर्फ और सिर्फ मराठा क्षत्रप कहलाये और अपने आपको कृषक कर्मी (कुर्मी / कुणबी) से जोड़ के रखा और उनके उत्तराधिकारी और वंशज आज के समय में भी कृषक कर्मी (कुर्मी / कुणबी) के नाम से जाने जातें हैं और उनसे अपने को जोड़ के रखा भी है।

(3) राजा सुहेलदेव—राजा सुहेलदेव (995 ई0 से 1050 ई0)—राजा सुहेलदेव श्रावस्ती, उत्तर प्रदेश के राजा थे। उनके पिताजी का नाम राजा मोरध्वज था। राजा सुहेलदेव दो भाई थे, एक स्वयं सुहेलदेव दूसरे मलेहदेव। मलेहदेव ने ही आगे चलकर लखनऊ के पास में अपने नाम से मलिहाबाद तहसील की स्थापना की, जो आज भी दशहरी आमों के लिए प्रसिद्ध है। ये राज धर्म को निभाने के बाद भी अपने आप को राजपूत जैसे शब्द से अलग रखे। मुस्लिम आतातायी महमूद गजनी ने 17 बार भारत में लूट मचाया था, उसका भांजा सलार मसूद गजनी था, जिसने पूरे पश्चिमी भारत के राजा—महाराजा को पराजित करते हुए हिन्दू महिलाओं के साथ हत्या और बलात्कार जैसे नीच काम करते हुए रास्ते में सारे पूजा स्थलों को नष्ट करते हुए आगे बढ़ रहा था। राजा सुहेलदेव ने उसे रोका और मसूद गजनी के साथ अपना राज धर्म निभाते हुए आतातायी मसूद को 14 जून 1033 ईस्वी को मार गिराया, जिसका प्रमाण आज भी आपको बहराइच के पास देखने को मिल जायेगा। आगे तुगलक वंश ने मसूद के दफनाए हुए जगह को इस्लाम का प्रचारक और विस्तारक की उपाधि देकर उस जगह को गाजी बाबा की मजार का नाम दे दिया, जहाँ आज भी मेला लगता है। राजा सुहेलदेव 15 जून 1033 ईस्वी की सुबह मसूद गजनी के नजदीकी इब्राहिम बारा हजारी के हाथों मारे गए। राजा सुहेलदेव और मसूद गजनी की लड़ाई में राजा सुहेलदेव के नजदीकि रिश्तेदार कन्नौज के राजा चन्द्रदेव ने भी साथ दिया था, जो बाद के समय में नेपाल की तराई में जाकर

बस गए। राजा चन्द्रदेव के वंशजों ने बाद में अपने आपको राठौर राजपूत के रुप में स्थापित किया। आगे चलकर वीर शिरोमणि सुहेल देव जी के वंशजों ने दो भागों में बँटकर अपनी पहचान बनायी। पहले प्रकार के सच्चे अनुयायी सुहेल देव जी वंशी पासी समाज को अंगीकार किये और शिरोमणि सुहेल देव जी को पासी समाज का नायक बनाकर रखा। पासी प+असी से बना हुआ शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ प = पंजा, असी = तलवार, लेकिन आज ये समाजिक आर्थिक रूप से कमजोर होने की वजह से पंजा से आधारित काम करने लगे और पिछड़ते चले गये, जो अब अनुसूचित जाति के अन्तर्गत आते हैं। दूसरे प्रकार के अनुयायी सुहेलदेव जी से अलग होकर बैस राजपूत बन गये।

(4) आदिवासी साम्राज्य :– (1812–13) में फ्रांसिस बुकानन दक्षिण बिहार आया, स्मारकों को देखा, अभिलेखों को पढ़ा और दांतों तले उंगली दबाते हुए लिखा कि पूरे मगध तथा कीकट में कभी चेरो–खरवारों का विशाल आदिवासी साम्राज्य था।

इतिहास–ग्रंथों में कहां है चेरो–खरवारों का विशाल आदिवासी साम्राज्य?

आपने तो चेरो–खरवारों को चेला, दास और नौकर बना रखा है। जंगल–पहाड़ में, दाने–दाने को मोहताज, दर–दर भटकते, वहीं चेरो–खरवार जिनके पुरखों के साम्राज्य की अमर–गाथा कैमूर की पहाड़ी पर जगह–जगह अंकित है। वे कभी रोहतासगढ़ किला के शासक थे। वही रोहतासगढ़, जिसका घेरा 28 मील तक फैला है और जिसमें कुल 83 दरवाजे हैं। फ्रांसिस बुकानन ने डिस्ट्रिक्ट ऑफ शाहाबाद(1812–13) में बड़े गर्व के साथ तुतला भवानी, ताराचंडी, फुलवारी में स्थित आदिवासी राजाओं के शिलालेखों का जिक्र किया है। फ्रांसिस बुकानन ने प्राचीन काल के आदिवासी राजा फुदी चंद्र की बखान में कई पन्ने खर्च किए हैं और फिर बांदूघाट अभिलेख को पढ़कर 11 आदिवासी राजाओं की सूची प्रस्तुत की है। एक से बढ़कर एक आदिवासी राजा– प्रताप धवल, विक्रम धवल से

लेकर महानृपति उदय चंद्र तक थे। महानृपति जपिल प्रताप धवल (1162 ई.) ने तो अकेले 21 सालों तक शासन किया और झारखंड का जपला इसी प्रतापी राजा जपिल के नाम से मशहूर हुआ। किला चुनारगढ़ से लेकर गिद्धौर तक, पाल काल से लेकर मध्यकाल तक, न जाने कितने इस क्षेत्र में आदिवासी साम्राज्यों के निशान हैं– सासाराम, रोहतासगढ़, शेरगढ़, गुप्ताधाम, देव मार्कण्डेय, गड़हनीगढ़। लेकिन आज सभी के सभी आदिवासी कुल के राजा स्वंभू राजपूत हो गए और उनके कुल भाई रह गये आदिवासी के आदिवासी।

(5) सिंधिया राजवंश–सिंधिया राजवंश को महाराष्ट्र प्रदेश के सतारा जिले के ग्राम कन्हेरखड़ के रहने वाले (पटेल) पाटिल समाज के जनको जी राव सिंधिया का बेटा राणोजी सिंधिया ने स्थापित किया था। इनके पूर्वज गुजरात के पटेल थे, जो समय के साथ महाराष्ट्र के सतारा जिला में जाकर बस गए थे। उनके उत्तराधिकारियों में राणोजी, जयजीराव, ज्योतिबाराव, दत्तजीराव, जानकोजीराव, महादजी राव और दौलतराव सिंधिया शामिल थे। इन्होंने 1731 ईस्वी में उज्जैन में अपनी राजधानी स्थापित किया। सिंधिया राज्य ग्वालियर में 18वीं सदी के उत्तरार्ध में एक प्रमुख क्षेत्रीय शक्ति बन गया था। दौलतराव सिंधिया ने कई राज्यों पर प्रभाव कायम किया, और उत्तर भारत के कई राजाओं पर विजय प्राप्त की थी। 1818 ईस्वी के तीसरे अंग्रेज – मराठा युद्ध में अंग्रेजों से दौलतराव सिंधिया हार गये। दौलतराव सिंधिया ने ब्रिटिश भारत के भीतर एक रियासत के रूप में स्थानीय स्वायत्तता को स्वीकार कर लिया। दौलतराव सिंधिया की मृत्यु के बाद इनकी महारानी बैजा बाई ने रियासत को संभाला। दौलतराव सिंधिया को कोई बच्चा पैदा नहीं हुआ इसलिए इन्होंने सतारा जिले के पास में अपने पाटिल परिवार से एक बच्चा गोद लिया, जिसका नाम जानकोजी राव रखा। दौलतराव सिंधिया का गोद लिया हुआ बच्चा जानकोजी राव जब बड़ा हुआ तो उसने राज्य का कार्यभार संभाला। जानकोजी की 1843 ईस्वी में मृत्यु हो गई और उसकी विधवा ताराबाई राजे सिंधिया ने सफलतापूर्वक रियासत की स्थिति को बनाए रखा। जानकोजी और ताराबाई राजे सिंधिया

को भी कोई बेटा नहीं था, फलस्वरूप उन्होंने भी सतारा जिले के पास में अपने पाटिल परिवार से एक बच्चे को गोद लिया, जिसका नाम जीवाजीराव सिंधिया रखा। उनके बाद में जीवाजीराव सिंधिया ने गद्दी संभाला। जीवाजीराव सिंधिया की पत्नी का नाम राजमाता विजयराजे सिंधिया था। जीवाजीराव सिंधिया और राजमाता विजयराजे सिंधिया ने अपने आपको शुद्ध रूप से राजपूत के नाम से सम्बोधित करना शुरू कर दिया और अपने होने वाले बच्चों को भी राजपूतों में शादी करना शुरू कर दिया जो आज आपके सामने है। जब 1947 ईस्वी में अंग्रेजों ने भारत को आजाद किया तब महाराजा जीवाजीराव सिंधिया ने भारत सरकार की प्रभुता को स्वीकार कर लिया, तब ग्वालियर को अन्य रियासतों के साथ मध्य प्रदेश में विलय कर दिया गया। जीवाजीराव ने 28 मई 1948 ईस्वी से 31 अक्टूबर 1956 ईस्वी तक राजप्रमुख (नियुक्त राज्यपाल) के रूप में कार्य किया। 1962 में, राजमाता विजयराजे सिंधिया, महाराज जीवाजीराव की विधवा चुनावी राजनीति में परिवार के कैरियर की शुरूआत की और लोकसभा के लिए चुनी गयी। वह पहले कांग्रेस पार्टी की सदस्या थीं और बाद में भारतीय जनता पार्टी की एक प्रभावशाली सदस्या बन गयीं। जीवाजीराव सिंधिया और राजमाता विजयराजे सिंधिया के उत्तराधिकारी पुत्र–पुत्रियाँ उषा राजे, माधवराव, वसुंधरा राजे, यशोधरा राजे हुए, आज ये अपने आप को शुद्ध जाट/राजपूत वंश का मानते हैं जबकि सत्यता कुछ अलग ही है।

1500 ईस्वी के बाद भारत में सभी राजाओं और राजपरिवारों की स्थिति लगभग ऐसी ही थी। कुछ राजपरिवार अपने पूर्वजों के नाम को अपने साथ बनाये रखे और कुछ राजपरिवार स्वार्थवश और अपने झूठे बड़प्पन हेतु अपने पूर्वजों के सामाजिक स्तर को छोड़कर अलग पहचान बना ली।

मैं सही कह रहा हूँ न?

<u>आकलन नं0–08</u>

पाल वंश की समाप्ति (10वीं शताब्दी) के बाद से ही भारतीय सत्ता और समाज में गिरावट का दौर शुरू हो गया, जिसके फलस्वरूप समूचे

भारत के राजाओं के अंदर अय्याशी और जलनशील प्रवृत्ति पनपने लगी थी और इनके वंशज या अनुयायी अपने आप को राजा का पुत्र या राजपुत्र कहकर सम्बोधित या महिमा मंडित करने लगे। इसी राजपुत्र शब्द को आगे चलकर अपभ्रंश राजपूत शब्द से सम्बोधित किया जाने लगा।

यहीं से (9वीं–10वीं सदी) राजपूत शब्द का उदय हुआ। राजपूत राजाओं के अंदर आपस में एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या और द्वेष की भावना काफी अधिक थी। बाद में प्रत्येक राजपूत राजा एक दूसरे राजा को नीचा दिखाने के प्रयास में एक–दूसरे की कमजोरी की खुफिया जानकारी विदेशी मुस्लिम आक्रान्ताओं को देने का काम करने लगे। भारत के अंदर तुर्क मुस्लिम आक्रमणकारियों को बुलाना और आपसी ईर्ष्या द्वेष के कारण एक दूसरे राजा को मारने और मरवाने के लिए उनका साथ देना, इन राजाओं की नियति बन गयी थी। एक समय ऐसा भी आया जब भारत के अंदर सारे स्वतंत्र राजाओं का अंत हो गया और जो बचे वो तुर्क मुस्लिम शासकों के अधीन होकर पारिवारिक सम्बन्ध बना लिए। कुछ स्वाभिमानी राजा भी थे, वे उनकी गुलामी से बचने के लिए किसी अज्ञात स्थान या जंगल में जाकर अपनी बची हुई जिंदगी बिताए।

इन मुगल और राजपूत राजाओं को अगर आप ध्यान से देखेंगे तो पायेंगे कि हर मुस्लिम शासक 2,000 – 4,000 सैनिक लेकर आया और राजपूतों के 25,000 – 50,000 सेना को चंद घंटों या दिनों में ही परास्त कर दिया। आखिर कैसे ?

1400 ईस्वी के आते –आते भारत के अंदर मुस्लिमों का साम्राज्य पूरी तरीके से स्थापित हो गया था। भारत में जितने भी हिन्दू राजा बचे थे वे अपना नैतिक पतन करते हुए मुस्लिम शासकों के साथ बेटी–रोटी का सम्बन्ध स्थापित कर लिये और दरवार के सेवक बन गये। कुछ गुलाम हिन्दू राजाओं ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया, जिनमें राजपूत अब पठान के रूप में और ब्राह्मण शेख के रूप में जाना या पहचाना जाता है। कुछ हिन्दू राजा मुस्लिम शासकों के दरवार में सेनापति या किसानों से लगान वसूल

करने का काम करने लगे। मुस्लिम शासकों ने कुछ वर्षो बाद अपने अधिनिस्थ लगान वसूल करने वाले (परिवर्तित मुस्लिम राजा या हिन्दू राजा) को छोटा–छोटा रियासतदार बना दिया। उस रियासतदार को मुगलों के बाद अंग्रेजों ने भी आगे बरकरार रखा, जिनको हमलोग आज स्टेट या महाराज कह कर सम्बोधित करते हैं। सही अर्थो में ये कभी भी स्टेट या महाराज नहीं रहे। ये विशुद्ध रूप से मुगल और अंग्रेजों के गुलाम रियासतदार थे। ये मुगल और अंग्रेजी हित के लिए हमेशा ही किसानों से लगान वसूलने का काम किया। जैसे – उदयपुर स्टेट, ग्वालियर स्टेट, जगदीशपुर स्टेट, जोधपुर स्टेट, प्रतापगढ़ स्टेट, दरभंगा महाराज, हथुआ स्टेट, डुमराव स्टेट,––– इत्यादि।

भारत में मुस्लिमों का सम्राज्य पूर्ण रूप से स्थापित होने के बाद, सुल्तानों ने भारत के बहुत सारे हिन्दू राजा के महलों या किला को नष्ट करवा दिया अथवा उसे अपने नाम से रूपांतरित कर अपना किला घोषित किया। 1500 ईस्वी के बाद से भारत के अंदर जितने भी मुगलकालीन राजपूत महल देखने को मिलता है, या देखते हैं, उनमे से कोई भी राजा का किला नहीं था, बल्कि मुगलों के रियासतदार का किला था, जो मुगलों के साथ रहकर यहाँ की आम जनता की सम्पत्ति को लूटकर काफी सम्पन्न हो गये थे।

1757 ईस्वी तक व्यवहारिक रूप से मुगलों से सत्ता अंग्रेजों के हाथ में आ गयी थी। अब ये सारे रियासतदार (मुगल रियासतदार और हिन्दू रियासतदार) अंग्रेजी सरकार की गुलामी स्वीकार कर लिए और जो नहीं किये उनके राज्यों को अंग्रेजों ने जबरदस्ती अपने कब्जे में ले लिया। अब ये सारे रियासतदार अंग्रेजों की चाटुकारिता बढ़–चढ़ कर करने लगे। पूरे भारत के अंदर अंग्रेजों की सत्ता एक क्षत्र रूप से विकसित हो गयी थी। अपने–अपने रियासत के अंदर हर रियासतदार किसानों से लगान वसूल कर अंग्रेजी सरकार को देने लगा था। अब पूरे भारत के अंदर जनता और अंग्रेजों के बीच की कड़ी ये रियासतदार बन गये और अंग्रेजों का पिठ्ठू बन कर किसानों के साथ सामंतवादी व्यवहार करते हुए मनमानी लगान वसूल

करने लगे तथा अपने आप को उस रियासत का राजा घोषित करवाने लगे।

मैं सही कह रहा हूँ , न!

गौर से सोचिये !

पहले के समय में शिक्षा और जागरूगता का काफी अभाव था, अतः समाज और जनता इन चाटुकारों को राजा समझती थी। परन्तु अब के समय में शिक्षा का काफी प्रभाव है, अतः समाज और जनता इन चाटुकारों को क्या समझेगी? आप खुद तय करें!

इतिहासकारों के अनुसार भारत में एक मिथ्या प्रचार है कि राजपूत ही असली क्षत्रिय हैं। क्या यह सही बात है? क्षत्रिय का अर्थ होता है – रक्षक, सैनिक, सुरक्षा देने वाला। इस क्षत्रिय शब्द की उत्पत्ति क्षत्री, क्षत्रप, छत, छाता, जैसी शब्दों से हुई है। मैं इस विषय पर आपका ध्यान खींचना चाहता हूँ। 1400 ईस्वी के आस–पास भारत में मुगल बादशाहत की स्थिति बिल्कुल ही चरम पर पहुंच गयी थी। अब भारत में सत्ता के अलावा मुगल बादशाह अपने धर्म ''इस्लाम'' को भी फैलाने का काम करने लगे थे। बाद में इस काम में खुल कर हिन्दुओं की ओर से ब्राह्मण और राजपूतों ने मुगलों का साथ दिया। हिन्दू समाज के अंदर अपने धर्म से लगाव को कम करने के लिए मुगलों ने ब्राह्मणों के द्वारा नए–नए मनगढंत रामायण, गीता, पुराण जैसे विवादित ग्रन्थों की रचना करवाये। उन विवादित ग्रंथों को समाज के अंदर ब्राह्मणों और राजपूतों के द्वारा काफी जोर–शोर से प्रचारित और प्रसारित किया जाने लगा।

सन् 1206 ई0 में मुस्लिम शासन की स्थापना के बाद से मुस्लिम शासन द्वारा भारत में इस्लामीकरण का विस्तार दिन–प्रतिदिन बढ़ते चला गया और मुस्लिम सामन्ती सैनिकों द्वारा सरेआम हिन्दू महिलाओं से बलात्कार शुरू हो गया था। इससे बचने के लिए हिन्दू महिलाओं के अंदर ''गोदना प्रथा'' चली थी, जिसको इस्लाम के अंदर अछूत माना जाता है (इस्लाम में फोटो वर्जित है)। इससे हिन्दू महिलाएं मुगलों (मुस्लिम शासकों) के अत्याचार से बच जाती थीं। जिस ''गोदना प्रथा'' को हिन्दू महिलायें

मुगलों से बचने के लिए अपनायी थीं, उसे हिन्दू समाज के अंदर ब्राह्मण और राजपूत महिलाओं को छोड़कर हिन्दू समाज की सभी महिलाओं ने अंगीकार किया था। वर्त्तमान में भी आप इसे अपने आस–पास देख सकते हैं। यानि कि ब्राह्मण–राजपूत मुगलों के साथी थे, जिसकी वजह से उनकी महिलाओं को मुगलों से किसी भी प्रकार का भय नहीं था।

गोदना प्रथा को देखकर मुगलों के सलाहकार ब्राह्मण और राजपूत मुगलों को और भी ज्यादा उग्र करने का काम करने लगे। अब सरेआम मुगलों ने खुल कर हिन्दुओं का कत्ल करना शुरू कर दिया। भारत के अंदर उस काल में हृदय विदारक दृश्य उत्पन्न हो गया था और पूरे भारत में हाहाकार सा मच गया था।

16वीं सदी (1500ई0 के बाद) में इस वीभत्स दृश्य को देखकर भारत के स्वाभिमानी हिन्दुओं के अंदर चिंता काफी बढ़ गयी थी। मुगलों के जुल्म और अत्याचार को रोकने के लिए हिन्दुओं की ओर से एक संगठन स्थापित हुआ, जिसका नाम **"सिख खालसा"** था। इसके संस्थापक प्रथम सिक्ख **गुरू नानकदेव जी** थे। इनके पिता – **मेहता कालू जी** और माता – **तृप्ता** थीं। ये ग्राम–तलवंडी (अब ननकाना साहेब), लाहौर के रहनेवाले थे। गुरू नानक जी से लेकर दशम गुरू श्री गुरू गोविन्द सिंह जी तक ने हिन्दुओं की रक्षा हेतु मुगलों से लड़ाई लड़ी। इसके लिए इन्होंने जो सेना बनायी थीं, उस सेना के अंदर स्वेच्छा से प्रत्येक हिन्दू परिवार का बड़ा लड़का यानि हर घर के सरदार की माँग की गयी थी। मुगलों से लड़ने के लिए स्वेच्छा से प्रत्येक माता–पिता ने अपने बड़े बेटे यानि घर के सरदार को गुरू जी को समर्पित या दान स्वरूप दिए थे। गुरू जी इन्हीं बड़े बेटे सरदारों की टोली बनाकर सबों को युद्ध की शिक्षा दी और और एक नारा दिया "**जो बोले सो निहाल सत श्री अकाल! वाहे गुरू जी दी फतह, वाहे गुरू जी दा खालसा"** आदि कई उत्साही गगनभेदी नारों के साथ मुगलों के ऊपर आक्रमण करना शुरू कर दिया। पूरी सरदारों की टोली ने गुरू जी के नेतृत्व में डटकर मुगलों से लड़ाई लड़ी। मुगलों की सत्ता के अंत होने के

बाद भी इस सेना के वंशज आज भी मौजूद हैं, जिनको हम–आप आज **"सरदार"** या गुरू के अनुयायी **"सिख"** कहते हैं। आप इन सारी बातों को गुरूवाणी या गुरूद्वारा के म्यूजियम में जाकर देख सकते हैं (अमृतसर, पटना सिटी गुरूद्वारा)। मैं सभी पाठकगण से कहता हूँ कि जब भी मौका मिले आप उस सरदार या सिख समाज के बीच जायें और सिख समाज की जातिगत व्यवस्था देखें और अनुभव करें। उस समय उस इलाके में रहने वाली जितनी भी जातियाँ दुखी थीं, सिख या खालसा पंथ के अंदर वे सारी जातियाँ मिल जाएगीं। उदाहरण स्वरूप कुछ जातियों के नामों की चर्चा कर रहा हूँ – जाट सरदार, गूजर सरदार, सैनी सरदार, धोबी सरदार, बनिया सरदार, बाल्मीकि सरदार, जाटव सरदार, आदि। लेकिन सबसे आश्चर्य तब होगा जब आप सरदारों के अंदर ब्राह्मण सरदार या राजपूत सरदार को नहीं पायेंगे। जितनी इच्छा है आप खोजिए, खोजते रह जाएंगे, किन्तु ब्राह्मण सरदार या राजपूत सरदार एक भी नहीं मिलेगा। क्या ब्राह्मण और राजपूत उस इलाके में नहीं रहते थे या वो हिन्दू की रक्षा के लिए अपने घर का बड़ा लड़का नहीं दिया था? सच तो यह है कि ये सारे हमेशा ही मुगलों के दरबार में दरबारी का काम करते थे और मलाई खाने में व्यस्त थे। ये सारे लोग मुगलों के आगे अपने स्वाभिमान को बेचकर चाटुकारिता में व्यस्त थे।

इससे साफ जाहिर होता है कि उस समय का राजपूत कहीं या किसी भी दृष्टिकोण से क्षत्रिय नहीं था। उस समय का राजपूत या हिन्दू राजा सिर्फ मतलबी और सत्ता सुख भोगी था। उसने हमेशा ही अपने से मजबूत और बड़े लोगों के सामने अपना दूम हिलाने का काम किया है। ये हमेशा ही गरीब और भोली–भाली जनता पर अपनी झूठी शान व सामंतवादी प्रवृत्ति का प्रदर्शन किये हैं।

आज तक इतिहास के पन्ने पर जितने भी मुगलकालीन राजाओं की लड़ाई की चर्चा मिलती है वे सभी सिर्फ राजा की गद्दी या अय्याश जिंदगी को बचाने के लिए थी। मुगलकालीन किसी भी हिन्दू राजा ने भारतीय समाज के हित में लड़ाई नहीं लड़ी थी। भारतीय समाज के हित में मुगलों से लड़ने वाले सिर्फ खालसा के संस्थापक प्रथम गुरू गुरूनानकदेव

जी से लेकर दशम गुरू गोविन्द सिंह जी और उनके अनुयायी थे। मुगलों से लड़ने वाले दूसरे राजा क्षत्रपति शिवाजी महाराज हुए जो सही अर्थों में सर्वजन की रक्षा हेतु जीवनपर्यन्त मुगलों और मुगलों के राजपूत सेनापति से लड़ते रहे।

अंग्रेजों के चाटुकार इतिहासकारों ने बढ़ा–चढ़ाकर राजपूत राजाओं की झूठी महिमा–मंडन करने का काम किया है, जबकि सत्य बिल्कुल ही वैसा नहीं था। यह आप स्वयं भी विवेचना कर समझ सकते हैं।

<u>आकलन नं0–09</u>

शिवाजी महाराज : बालक शिवाजी (1627ई0 – 1680ई0) की माता जिजाऊ और पिता शाहजी कभी–कभी बालक शिवबा को साथ लेकर संत तुकाराम जी के प्रवचन (प्रबोधन) सुनने जाते थे। संत तुकाराम जी के समाज प्रबोधन (सत्य ज्ञान दर्शन) से ही प्रभावित होकर बालक शिवबा शुर–वीर बनकर मैदान में उतरे और आगे उन्होंने बहुजन राज्य स्थापित करने के लिए सामंती शासक और मुगल शासक के विरूद्ध विद्रोह किया।

संत तुकाराम जी – ये किसी मंदिर में जाकर भगवान के सामने तंबोरा बजाकर ताल कूटने वाले संत नहीं थे और नहीं आज के जैसे हरी–भक्त नारायण–नारायण कहने वाले संत थे। संत तुकाराम जी महाराज एक खेती करने वाले प्रतिष्ठित श्रीमंत सज्जन व्यक्ति थे। ब्राह्मण शोषकों द्वारा किसानों पर करते आ रहे अन्याय को देखकर संत तुकाराम जी ने लोगो में जागृति लाने हेतु सत्यज्ञान का प्रबोधन किया करते थे। संत तुकाराम जी किसी मंदिर में जाकर आराधना, भक्ति या पूजा नहीं करते थे।

उस छोटी सी उम्र में ही बालक शिवबा में भी संत तुकाराम जी का प्रबोधन ह्रदय में बैठ गया और उनके मन में एक स्वराज्य की कल्पना का बीज अंकुरित हुआ। बालक शिवबा अपनी छोटी सी उम्र में ही अपनी माता जिजाऊ से शुर–वीरता का गुण सीख मैदान में उतरे। सबसे पहले युवा शिवबा ने अपनी सामाजिक व्यवस्था का अध्यन करते हुए विदेशी राजकर्ता

का भी अध्ययन व अनुभव प्राप्त किये। तब उन्हें ज्ञात हुआ कि बाहर से आये हुए विदेशी शासक अपनी राजसत्ता स्थापित कर ऐश–मौज कर रहे हैं और उनके सिपहसलाहकार और देशी सामंत साथ मिलकर (ब्राह्मण दरवारी और राजपूत सेनापति) राजाओं के नाम पर दहशत फैला रहे हैं।

युवा शिवबा ने इस बात को गंभीरता से लेते हुए अपने स्वतंत्र राज्य निर्मित करने का विचार अपने साथियों के बीच रखा, जिसमें अपनी स्वयं की सत्ता और अपने बहुजन समाज का राज्य हो। युवा शिवबा ने इसके लिए धनगर, रामोशी, महार, मांग तथा धर्मान्तरित मुस्लिम युवकों की एक टोली बनाकर उन सबों के दिलो–दिमाग में जोश और हाथ में तलवार देकर प्रशिक्षित किये और करवाये। शिवबा की सेना में मुख्य रूप से 18 सेनापति थे, जिनमें 12 मुस्लिम सेनापति थे, उसमें मुख्य जिम्मेदारी अफजल खान, तोपची की जिम्मेदारी इब्राहिम खान, सेना में लगभग 30 प्रतिशत महार और 30 प्रतिशत मुस्लिम थे। बाकि बचे हुए प्रतिशत में कुणबी, धनगर, रामोशी और मांग थे। समुद्री किनारों की रखवाली करने हेतु हिंन्दू लोग समुद्र में अपने धर्म के डर से नहीं जाना चाहते थे, इस वजह से पूरे समुद्री इलाके की सुरक्षा की जिम्मेदारी नूरखां ने ले रखी थी। ऐसी बनावट थी शिवबा के लड़ाकू फौज की।

युवा शिवबा उस जमाने में शूद्रों के पहले युवक थे, जिन्होंने मनुस्मृति (ब्राह्मणी धर्म कानून) को तोड़कर अपने बहुजन समाज के हित के लिए बहुजन समाज के हट्टे –कट्टे युवाओं की सेना तैयार की थी। युवक शिवबा 16 वर्ष की आयु से लेकर 53 वर्ष की आयु तक के सफर में बहुजनों का बहुत ही बड़ा साम्राज्य स्थापित कर चुके थे। उसके बाद समाज में मानवतावादी दृष्टिकोण स्थापित करने हेतु शिवबा ने कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाने शुरू कर दिए। इसके लिए प्रथमतः सामाजिक कुरीतियाँ व जातीय भेदभाव कम करने हेतु अपने राज्य में आदेश निकलवाए।

सामाजिक कुरीतियाँ और जातीय भेद–भाव को दूर करना ही शिवबा और ब्राह्मणों के बीच में दरार पैदा होने का मुख्य कारण बना।

क्योंकि ब्राह्मण और उनके धर्मानुसार सामाजिक कुरीतियाँ और जातीय ऊँच–नीच ही ब्राह्मणी व्यवस्था की रीढ़ थी और उस ब्राह्मणी रीढ़ को तोड़ने का कोई प्रयास करे तो ब्राह्मण अपनी सर्वोच्चता खोकर एक सामान्य स्तर का ब्राह्मण हो जायेगा और यह किसी भी ब्राह्मण को हजम नहीं होता था और आज भी नहीं होता है। इसी बात से शिवबा के राज्य में रहने वाले सभी ब्राह्मणों ने अपना रोष प्रकट करते हुए शिवबा को अपना शासक मानने से इंकार कर दिया। उसके बाद ब्राह्मण अपने धर्मानुसार एक फरमान जारी कर कहा कि शिवबा **"शूद्र जाति"** से है और हिन्दू धर्मानुसार शूद्र लोग ब्राह्मणों का राजा नहीं हो सकता है। इसलिए शिवबा हम तुम्हारे द्वारा निकाले गए आदेश का पालन नहीं करेंगे। तुम्हें हमारे धार्मिक–सामाजिक व्यवस्था को सही करने का कोई अधिकार नहीं है। तुम्हें ब्राह्मणों को दंड देने का भी अधिकार नहीं है क्योकि अभी तक ब्राह्मणी धर्मानुसार आपका राजतिलक या राज सिहांसन ब्राह्मणों के द्वारा संम्पन नहीं हुआ है।

ब्राह्मणों द्वारा कही गयी बातों से शिवबा को गहरा धक्का लगा और वे बहुत ही ज्यादा आहत हो गए। तब उन्होंने सोंचा कि इतनी अच्छी सोच से बहुजनों का राज्य स्थापित किया है और मेरे राज्य में निर्दोष लोगों पर अन्याय हो, अत्याचार हो और मेरे द्वारा बनाये कानून को मेरे राज्य के लोग नहीं माने और सिर्फ यह कहकर मेरे आदेश की अवहेलना करें कि आपका राजतिलक नहीं हुआ है क्योंकि आप इस राज्य के धर्मानुसार राजा नहीं हैं। तब शिवबा बहुजनों की भलाई के लिए किसी प्रकार से ब्राह्मणों द्वारा अपना राजतिलक करवाने की तैयारी करने में लग गए। शिवबा अपने राजतिलक करवाने की खबर ब्राह्मणों के यहाँ भेजवा दिए। इस खबर से ब्राह्मणों का पूरा समुदाय ही आग–बबूला हो गया और कहने लगा कि आपके कलाई में जितनी भी ताकत हो, आप कितने भी शुर–वीर हों, आप कितने भी न्यायी हों, फिर भी आप हम ब्राह्मणों के शासक नहीं हो सकते हो क्योकि आप शूद्र (कुर्मी,कुणबी) जाति से हो और ब्राह्मणी धर्मानुसार शूद्र कभी भी ब्राह्मण और क्षत्रिय का शासक नहीं हो सकता है। इसलिए आपका राज्याभिषेक हम सभी ब्राह्मण नहीं करेंगे और नहीं किसी को करने देंगे। दूसरी ओर भारतीय

इतिहासकारों के अनुसार शिवबा के गुरु (जिसको नकली प्रमाणित किया जा चूका है) रामदास जी कहने लगे कि प्रथमतः शिवबा को अपना साम्राज्य ब्राह्मणों को दान कर देना चाहिए, तदुपरांत शिवबा को इस ब्राह्मणी राज्य का सेनापति बनकर राज्य की सेवा करनी चाहिए, तो मैं उनको वैदिक रीति से धर्मानुसार क्षत्रिय का दर्जा देकर राजतिलक करवा दूंगा!

इस प्रकार के सुझाव और आलोचना ब्राह्मणों के द्वारा सुनकर शिवबा अंदर ही अंदर काफी क्रोधित हुए और कहने लगे कि यह राज्य मैं ब्राह्मणों के लिए नहीं विजित किया हूँ, ये बहुजनों का राज्य है, जिसे सिर्फ बहुजनों के अधिकार के लिए बनाया गया है। इसलिए तुम ब्राह्मण लोग यदि मेरा राजतिलक नहीं भी करोगे तो मैं दूसरे किसी ब्राह्मण से राजतिलक करवा लूंगा और आगे इसी क्रम में वाराणसी के ब्राह्मण गागा भट्ट को मुँह–मांगी रकम देकर राजतिलक करवाने के लिए राजी किया गया।

महाराष्ट्र के कट्टर पंथी ब्राह्मणों के विरोध से शिवबा काफी उग्र हो गए थे। उनके आत्मसम्मान को काफी धक्का लगा था। इस वजह से किसी कीमत पर अपना राजतिलक करवाने पर आमादा हो गए थे। ये धूर्त–लोभी ब्राह्मण गागा भट्ट से मिलकर शिवबा का खजाना ठगने की योजना बनाते हुए गागा भट्ट को वाराणसी से महाराष्ट्र लाये। परंतु महाराष्ट्र के कुछ कट्टर पंथी ब्राह्मणों ने गागा भट्ट के ऊपर दबाव बनाकर राजतिलक नहीं करने का आदेश दिया। महाराष्ट्र के कट्टर – लोभी ब्राह्मण समुदाय और गागा भट्ट के बीच काफी चर्चा के बाद एक निष्कर्ष ब्राह्मणों ने निकाला कि इस शिवबा को अपमानित करने हेतु उसे राजतिलक के नाम पर उपहास का पात्र भी बनाओ और इसकी सारी सम्पति भी दान – दक्षिणा में प्राप्त कर शिवबा को कंगाल कर दो!

6 जून 1674 ईस्वी को ब्राह्मणों की साजिश का ही परिणाम था कि शिवबा का राजतिलक वैदिक मंत्रों की जगह पुराण के मंत्रों से किया गया और बताया गया कि शूद्र के नाते आपको माथे पर तिलक की कोई आवश्यकता नहीं है। इतने पर भी ब्राह्मणों की अवहेलना की पराकाष्ठा नहीं

रुकी तो ब्राह्मणों ने गागा भट्ट से शिवबा का तिलक पैर के अंगूठे से करने की बात कह दी!

शिवबा इस अपमान से लाल हो गए और क्रोधित होकर अपने राजतिलक समारोह को स्वयं निरस्त कर दिए। इन सारे घटना क्रम को देखकर शिवबा की माताजी जिजाऊ को बहुत ही बड़ा सदमा लगा और उसके बाद माताजी दस दिन से ज्यादा जिन्दा नहीं बच सकीं। 17 जून 1674 ईस्वी को अपना शरीर त्याग दीं।

शिवबा को इन सभी घटनाओं से काफी दुःख हुआ। उन्होंने इस घटना के प्रतिशोधस्वरुप राजसिंहासन पर कभी नहीं बैठे। क्षत्रपति शिवाजी महाराज 6 जून 1674 ईस्वी को ब्राह्मणों द्वारा अपमान का घूँट पीने के बाद ब्राह्मणों के वैदिक धर्म व्यवस्था को त्यागकर **"शाक्त पंथ"** की दीक्षा लिए। आगे शिवबा 24 सितंबर 1674 ईस्वी को ब्राह्मणों द्वारा अस्पृश्य ठहराई गयी समाज की कन्या से ''शाक्त विधि'' द्वारा विवाह करते हुए अपना राज्यारोहण करवाया और इस राज्यारोहण की प्रक्रिया में शाक्त पंथी सभी कार्यक्रम अपने एक मुस्लिम सैनिक से संपन्न करवाये। शिवबा इसी राजतिलक के बाद क्षत्रपति शिवाजी महाराज कहलाये और उसके बाद क्षत्रपति शिवाजी महाराज ने अपने राज्य में ब्राह्मणी वैदिक पंथ के स्थान पर शाक्त पंथ प्रचलित करवाये।

क्षत्रपति महाराज से सम्पूर्ण बहुजन जनता संतुष्ठ थी। लेकिन केवल ब्राह्मण वर्ग अंदर ही अंदर असंतुष्ट होकर सुलग रहा था। ब्राह्मणों में एक जन्म जात खासियत और प्रवृति होती है, जो नदी में उगे हुए पेड़ से हू ब हू मिलती है। आप स्वयं अनुभव भी कर सकते हैं। नदी में जब तूफान या अत्याधिक पानी आ जाता है तो उस नदी का सारा पेड़ – घास पानी की धारा के अनुसार झुक जाता है, लेकिन जैसे ही पानी की धारा कम या खत्म होती है तो वो सभी घास पुनः इकट्ठे होकर पानी से ऊपर उठ जाते हैं और झाड़ीदारनुमा पेड़ का रूप लेकर पानी का अवरोध करना शुरू कर देते हैं। पानी की धारा से ये घास कभी बाहर निकलते नहीं हैं। ये ब्राह्मण भी ऐसे ही

होते हैं। शिवाजी महाराज की धारा के आगे झुक तो गए थे लेकिन आगे मौके की तलाश में लगे रहे।

तथाकथित रामदास जी, जिसको कुछ इतिहासकारों ने शिवाजी महाराज का गुरु का दर्जा दे रखा है, इस सज्जन ने तो अपने **"दास बोध ग्रन्थ"** में शिवाजी महाराज को **"मूर्ख राजा"** तक लिख डाला है **"देवी राज करो तो एक मूर्ख"** अर्थात रामदास जी कहते हैं कि जो ब्राह्मणों (भूदेव) तथा उनके देवों पर राज करता है वह (शिवाजी) मूर्ख राजा है।

क्षत्रपति शिवाजी महाराज स्वराज्य की स्थापना में लगे हुए थे और उधर ब्राह्मण–भाट मुस्लिम बादशाह के दरबार में वकीली और दलाली कर रहे थे। कुछ ब्राह्मण मुगल दरबार में सेनापति, दीवान, सलाहकार और कुछ ब्राह्मण क्षत्रपति शिवाजी महाराज की खुफियागिरी करते हुए धन प्राप्ति और मौज मस्ती कर रहे थे। एक समय का वाक्या है कि क्षत्रपति शिवाजी महाराज का सेनापति काजी हैदर से, मुगल सरदार अफजलखान के सेनापति कृष्ण भास्कर कुलकर्णी ने अपने सरदार से मिलने हेतु समय माँगा, काजी हैदर ने अपने महाराज से मिलकर अफजलखान से मिलने का समय निश्चित कर दिया। लेकिन दोनों के मिलने में एक शर्त रखी गयी कि दोनों निहत्थे ही एक निश्चित जगह एकत्रित होंगे। तय कार्यक्रम के अनुसार शिवाजी महाराज अफजलखान से मिलने को निकलने ही वाले थे कि उनका गुप्तचर सेनापति रूस्तम जमाल ने बोला कि महाराज अफजलखान आपसे काफी लम्बा – तगड़ा और घठिया आदमी है, वह मौका मिलते ही आपका गला कभी भी दबोच सकता है इसलिये ये बघनखा अपने अंगुली में छुपाकर मेरी तरफ से लेतें जाएं और जब भी अफजलखान नीच हरकत करे तो उसका पेट इस बघनखा से फाड़ दें। नियत समय पर शिवाजी महाराज और अफजलखान की मुलाकात होती है। अफजलखान कद में काफी लंबा था और शिवाजी महाराज का कद उसके सामने काफी छोटा। अफजलखान शिवाजी महाराज से गला मिलने के बहाने उनका गला पकड़ने का प्रयास किया, परन्तु शिवाजी महाराज भी सचेत थे और उन्होंने अफजलखान के

पेट को अपने छुपाए हुए बधनखा से फाड़ दिया, जिसकी वजह से अफजलखान की मौत हो गई। अफजलखान का सेनापति कृष्ण भास्कर कुलकर्णी ने इस घटना को देखकर क्षत्रपति शिवाजी महाराज पर तलवार से वार कर दिया, लेकिन महाराज जी भी सचेत थे इसलिए बच गए। क्षत्रपति शिवाजी महाराज ने उसे दूसरे शासक का दूत समझकर भाग जाने को कहा, परन्तु कुलकर्णी ने दूसरी बार फिर क्षत्रपति शिवाजी महाराज पर वार करने का प्रयास किया, किन्तु इस बार क्षत्रपति शिवाजी महाराज अपने को बचाते हुए अपने सेनापति से तलवार लेकर इस (ब्राह्मण) कृष्ण भास्कर कुलकर्णी को दो टुकड़ो में बिखेर दिए।

क्षत्रपति शिवाजी महाराज ने अपने जीवन के अनमोल 31 वर्ष कठिन संघर्ष में बिता कर अपने जिस स्वराज्य का निर्माण किया था, उसे ब्राह्मणों ने एक साजिश के तहत राज्यरोहण से मात्र 6 वर्ष बाद ही शिवाजी महाराज की छल पूर्वक हत्या कर नष्ट करना शरू कर दिया। कुछ धूर्त इतिहासकार शिवाजी महाराज की मृत्यु का कारण घुटने की बीमारी बताते हैं, परन्तु पच्चास साल के हट्टे–कट्टे शिवाजी महाराज घुटने की बीमारी से मरे यह मान लेना मूर्खता ही होगी! क्योकि घुटना की बीमारी से अचानक किसी की मृत्यु नहीं होती है। शिवाजी महाराज की मौत किसी लड़ाई या इस्लामिक शासकों के द्वारा नहीं हुई थी। तो फिर निश्चित रूप से यह ब्राह्मणों के ही साजिश का परिणाम है। उनकी हत्या किसी बिकाउ सेवादार से जहर देकर करवाई गई थी, अब यह स्पष्ट हो चुका है।

शिवाजी महाराज की मृत्यु उपरांत ब्राह्मणों ने 8 से 9 वर्षों में ही उनके बड़े लड़के संभाजी महाराज का कार्यकाल खत्म कर दिया। शिवाजी के बड़े लड़के संभाजी महाराज काफी विद्वान और बहादुर व्यक्ति थे, लेकिन ब्राह्मणों ने साजिश के तहत चार बार उनके ऊपर विष का प्रयोग करवाया, परन्तु ब्राह्मण इस साजिश में सफल नहीं हो सके। इससे चिढ़कर ब्राह्मणों ने आखिर में संभाजी महाराज को औरंगजेब के सैनिकों के हाथों पकड़वा दिया। औरंगजेब ने बहादुर संभाजी महाराज के साथ एक राजा जैसा

सलूक करते हुए बंदी गृह में रखा और इनके साम्राज्य को अपने अधीन करते हुए संभाजी महाराज को तड़ीपाड़ करने का आदेश दे दिया, परंतु ब्राह्मणों ने औरंगजेब से संभाजी महाराज को छोड़ने पर प्रश्नवाचक (?) चिन्ह लगते हुए कहने लगा कि हुजूर अगर आप संभाजी को छोड़ देंगे तो ये हम ब्राह्मणों को कतई नहीं छोड़ेगा। आप ऐसा करें कि संभाजी को हम ब्राह्मणों के हवाले कर दें, हमलोग इसे मनुस्मृति कानून के अनुसार सजा देकर छोड़ देंगे।

जैसे आज हमलोगों को मनुस्मृति की पूरी जानकारी नहीं है, उसी प्रकार से उस समय भी मुगल शासक को मनुस्मृति की पूरी जानकारी नहीं थी। जिस वजह से मुगल सम्राट ने संभाजी को ब्राह्मणों के हवाले कर दिया। दुष्ट ब्राह्मणों ने संभाजी महाराज जी के साथ जिस बर्बरता के साथ सलूक किया, आप उस स्थिति का अवलोकन कर सिहर जायेंगे। ब्राह्मणों ने सर्वप्रथम संभाजी महाराज को अपने ग्राम में ले जाकर दोपहर में एक खम्भे से बांध दिया। उसके बाद उनके शरीर की पूरी चमड़ी उधेड़ कर नमक–मिर्च लगा दिया। संभाजी महाराज दर्द से व्याकुल होकर छटपटाने लग गए, लेकिन ब्राह्मणों को संभाजी महाराज पर जरा भी दया नहीं आयी। इतने पर भी जब ब्राह्मणों की इच्छा पूर्ति नहीं हुई, तो उसी तड़पते हालात में संभाजी महाराज को बांस में लटकाकर पूरे गांव में तब तक घूमाते रहे जब तक कि संभाजी महाराज की मृत्यु नहीं हो गयी। संभाजी की मृत्यु उपरांत ब्राह्मणों ने इसे अपनी जीत मानते हुए इसे नए युग का आरम्भ बताया। और आगे उसी दिन को ब्राह्मणों ने महाराष्ट्र में **“गुड़ी पड़वा”** उत्सव का नाम देकर मनाने लगे।

इस प्रकार छलकपट द्वारा शिवशाही का अंत करते हुए ब्राह्मणों ने पेशवाई यानि ब्राह्मणी राज कायम किया था। पेशवाई में शिवशाही के ब्राह्मणी नौकर – चाकर ही उस स्वराज्य का मालिक बन गया था। ब्राह्मणों ने उस पेशवाई शासन से ही शिवाजी महाराज के इतिहास को गायब करना शुरू कर दिया था। इसका स्पष्ट उदाहरण यह है कि ब्राह्मणों ने अपने

पेशवाई काल से लेकर अंग्रेजी काल तक यानि 200 वर्षो तक कभी भी शिवाजी महाराज की जयंती उत्सव या स्मृति दिवस नहीं मनाया था। इतना ही नहीं शिवाजी महाराज को कहाँ दफनाकर समाधी बनाया, इस बात की भी जानकारी ब्राह्मणों ने किसी को नहीं दी थी। उन्हें भय था कि शिवाजी महाराज की भावना से बंधकर पुनः बहुजनों में कहीं जागृति न आ जाये।

फिर आज शिवाजी महाराज की समाधी कैसे मिली ?

महाराष्ट्र सरकार का अभिलेख कहता है कि 1826 ईस्वी में **"ग्रैंड डफ"** नाम के अंग्रेज शोधक ने **"मराठा कालीन इतिहास"** नाम से एक शोध पुस्तक लिखा था। उस किताब की जानकारी महात्मा ज्योतिबा फुले को लग गयी। उन्होंने उस पुस्तक में लिखी बातों के आधार पर रायगढ़ के जंगलों में जाकर काफी परिश्रम किये। तदुपरांत उन्हें जंगली झाड़ियों में छुपी हुई शिवाजी महाराज की समाधी मिली। अर्थात पेशवाई शासन के 150 वर्षो तक कोई भी ब्राह्मण किसी को जानने तक नहीं दिया कि शिवाजी महाराज की समाधी कहाँ हैं और ना हीं स्वयं कोई ब्राह्मण उस समाधी पर जाता था। समाधी मिलने के बाद महात्मा ज्योति बा फुले काफी भाव –विहल हो उठे और उन्होंने उसका पुनुरूद्दार किया।

यह बात रायगढ़ के आस–पास आग की तरह फैल गयी। पास के गांव से भाटों ने (ब्राह्मण) आकर ज्योति बा फुले द्वारा अर्पित फूलों को अपने पैरो से रौंदते हुए ज्योति बा फुले पर आग–बाबुला हो गये और चिल्लाने लगे कि तुमने शूद्र शिवाजी को देव कैसे बनाया? क्या शिवाजी तेरा बाप है? तुम इसकी पूजा क्यों कर रहे हो? क्या तुम ब्राह्मण हो? ये ब्राह्मणी अधिकार है! इस समय पूरे रायगढ़ का पुजारी मैं ब्राह्मण हूँ। मेरे बिना इजाजत लिए तुम शूद्र राजा की कैसे पूजा कर सकते हो!

ब्राह्मणों की इन सारी बातों को सुनते सुनते महात्मा ज्योती बा फुले की त्योरी चढ़ रही थी और वो गुस्से में आकर कहने लगे कि ये शिवाजी महाराज का पुण्य –प्रताप है कि तुम ब्राह्मणों (पेशवा) को सत्ता मुफ्त में मिली

है, तुम ब्राह्मणों की इतनी हिम्मत की उनकी समाधी पर चढ़े पुष्प को पैरों से फेंकतो हो! तुम सभी गिरे हुए ब्राह्मण उस निजाम आदिलशाह (मुगल) से राज सत्ता क्यों नहीं छीने, उल्टे उस मुगल के तलवे चाटते रहे, उसके दलाल बनकर जीते रहे। आज तुम हमारे बहुजनों के प्रतिपालक आदर्श राजा को छलकपट से मारकर उनका स्वराज्य हड़प लिये और तुमलोग 200 वर्षो बाद भी इनका अपमान और तिरस्कार करना नहीं भुले हो। ज्योतिबा फुले की प्रसिद्धी से घबड़ाकर ब्राह्मणी भाट उनसे उलझना ठीक नहीं समझा।

1869 ईस्वी को महात्मा ज्योति बा फुले जी और बहुजनों द्वारा क्षत्रपति शिवाजी महाराज की प्रथम जयंती बहुत ही धूम –धाम से मनाई गयी। महात्मा फुले जी के द्वारा समाज में लायी गयी जागृति से शिवाजी महाराज की जयंती दिन–प्रति–दिन उनके चाहने वालों में फैलती गयी। जिससे ब्राह्मण फिर चिंतित होने लगे। आगे चलकर पुनः ब्राह्मणों ने भी इस जयंती में अपनी भागीदारी दिखाकर शिवाजी जयंती का अपहरण कर लिया। शिवाजी जयंती का ब्राह्मणीकरण होने लगा। इसकी सारी उपलब्धि भी ब्राह्मणों के सर माथे बंधने लगी, और अंत में यह इतिहास ही बन गयी की शिवाजी महाराज की जयंती तिलक जैसे धूर्त और घोर जातिवादी ब्राह्मणों ने शुरू करवाया था।

इसी को कहते है **“ जब तक बेवकूफ जिन्दा रहेंगे, तब तक अकलमन्द शान से जिन्दा रहेगा ”!**

आज बहुजनों के पास थोड़ा सी भी तर्क शक्ति है तो कुछ प्रश्न उन धूर्त ब्राह्मणों से पूछ लिया करे :––

1) क्षत्रपति शिवाजी महाराज अगर हिन्दू धर्म के रक्षक थे, तो तुम्हारे बाप–दादा ने उनका राजतिलक क्यों नहीं किया?

2) क्षत्रपति शिवाजी महाराज को तो तुम ब्राह्मणों के बाप – दादाओं को तो

अपने कंधे पर बिठाकर नाचना चाहिए था क्योकि वे मुगलों से लड़ रहे थे! आखिर तुम्हारे पूर्वज नाराज क्यों थे?

3) अगर सच में क्षत्रपति शिवाजी महाराज का गुरु रामदास था तो उसने क्षत्रपति शिवाजी महाराज को अपने बोध ग्रन्थ में मूर्ख राजा क्यों बोला?

4) अगर क्षत्रपति शिवाजी महाराज मराठों के राजा थे तो फिर क्यों मराठों का 96 कुल–वंश शिवाजी के विरूद्ध मुगल शासक आदिल शाह की ओर से लड़ाई लड़ता था?

5) 96 कुल–वंश वाले मराठा, एक भी क्षत्रपति शिवाजी महाराज के सैनिक या सैन्य कर्मचारी में क्यों नहीं थे?

6) क्षत्रपति शिवाजी महाराज के सैन्य–बल में सिर्फ धनगर, रामोशी, मेहतर, मांग, महार और देशी धर्मपरिवर्तित मुस्लिम ही क्यों थे?

7) क्षत्रपति शिवाजी महाराज ने ब्राह्मणी धर्म छोड़कर शाक्त पंथ की दीक्षा क्यों ली?

8) औरंगजेब की तरफ से जब उसका सेनापति जयसिंह राजपूत और उसके राजपूत सैनिक क्षत्रपति शिवाजी महाराज से लड़ने आये थे, तो ब्राह्मण तुम्हारे पूर्वज बाप–दादा ने शिवाजी महाराज को हराने/हारने हेतु पूना में गणपति कोटी चंद यज्ञ क्यों किया था?

9) क्षत्रपति शिवाजी महाराज की प्रथम जयंती के समय तुम्हारे तोतले तिलक की उम्र क्या थी?

10) क्षत्रपति शिवाजी महाराज की जयंती पेशवा काल में तुमलोग क्यों नहीं मनाये?

11) क्षत्रपति शिवाजी महाराज के समुद्री सैन्य टुकड़ी और तोपची यानि दोनों के सेनापति भारतीय मुस्लिम क्यों थे?

इसी को कहते हैं कि ब्राह्मण अपनी ज्ञान से आगे नहीं है बल्कि बहुजन अपने अज्ञान से पीछे हैं।

क्षत्रपति शिवाजी महाराज अपने स्वराज्य हेतु जो भी सामाजिक क्रांति लाये थे उसके ऊपर सामाजिक इतिहासकारों का मत है कि ये क्रांति किसी मराठा, कुनबी, तेली, माली के भरोसे नहीं थी। क्योकि वे कहते है कि उस समय के शूद्र और आज के (OBC) पिछड़े समाज का खून शांत प्रवृति का होता है और ये हमेशा ब्राह्मणी पूजा – पाठ या शांति की तलाश में रहते है, ये कभी युद्ध नहीं कर सकते। फिर क्षत्रपति शिवाजी महाराज की सेना किसके भरोसे बनी और आगे उस शक्ति का सफलतापूर्वक उपयोग करते हुए बहुजनों का स्वराज्य स्थापित भी हुआ। आखिर कैसे?

सच यह है कि क्षत्रपति शिवाजी महाराज ने पूरी राजकीय क्रांति की रूप रेखा महार, मांग और परिवर्तित मुस्लिम के भरोसे की थी। क्योंकि ये सभी ब्राह्मणों द्वारा सबसे ज्यादा प्रताड़ित, बहिष्कृत और सताए गए थे। लेकिन मेरे कहने का उद्देश्य ऐसा भी नहीं है कि इनके साथ सैन्य शक्ति में कुणबी, धनगर, रामोशी, माली, तेली या अन्य बहुजन समाज नहीं था। सभी लोग शामिल थे, परंतु महार, मांग और परिवर्तित मुस्लिमों का जोश और जज्बा अलग ही था। इन सारी बातों को आप भी अनुभव कर सकते हैं।

पहला नाम महार का है, जिसके बारे में इतिहासकार कहते हैं कि यह काफी आक्रामक प्रवृति की नस्ल है, जिसे पूर्व काल के लड़ाकू राजवंश नाग वंश से जोड़ कर इसकी उत्पत्ति देखी जाती है। इन महारों का लगाव और रहन–सहन जंगल और पहाड़ों पर ज्यादा रहने से इन सभी लोगों को जंगली और पहाड़ी रास्ते की पूरी जानकारी थी, जिस वजह से छापामार युद्ध की रणनीति बनानें में ये काफी मददगार साबित हुए थे।

दूसरा नाम मांग का है, इसके बारे में इतिहासकार कहते है कि मांग का पूरा नाम मांग नहीं होकर मातंग था। मातंग और ब्राह्मणों का आपस में छतीस का रिश्ता काफी वर्षो से था। ये जाति नाम भी ब्राह्मणों का दिया हुआ था। हुआ यूँ कि ब्राह्मणों को एक समूह – वर्ग काफी तंग और परेशान करता था, जिसकी वजह से यह समूह ब्राह्मणों के लिए आतंक का प्रयाय बन गया

था। आगे इसी जाति समूह को ब्राह्मणों ने महा.आतंक = महातंक = मातंक के नाम से संबोधित किया। जो बाद में मांग नाम से जाना जाने लगा। ये सभी लोग काफी लड़ाकू और निडर थे।

तीसरी समाज की भागीरदारी धर्म परिवर्तित मुस्लिम वर्ग का था। ये हिन्दू से मुस्लिम सत्ता के लोभ में बनने वाले मान सिंह और जयसिंह जैसे नहीं थे, ये वो लोग थे जो ब्राह्मणों के छुआ–छूत और तिरस्कार से अपने स्वाभिमान को बचाने के लिए मुस्लिम धर्म की छत्र–छाया में गये थे। ये शौक से नहीं वरण मजबूरी में अपनी खुद्दारी बचाने हेतु गये थे। इसलिए इस समाज में ब्राह्मणों के प्रति गजब की बदले की कसक थी, सिर्फ इंतजार था तो सही वक्त और लम्हों का। और वो वक्त और लम्हा क्षत्रपति शिवाजी महाराज ने दे दिया। भला अब यह वर्ग कहाँ चुकने वाला था।

जो काम ब्राह्मणी मान्यता के अनुसार भारतीय लोग नहीं कर सकते थे, उसकी जिम्मेदारी ये धर्म परिवर्तित भाई लेने लगे। एक समय का वाक्या है कि क्षत्रपति शिवाजी महाराज की राज्य की सीमा समुद्र से लगती थी और ब्राह्मणी मान्यता के अनुसार कोई भी हिन्दू समुद्र में नहीं जा सकता था क्योंकि मान्यता थी कि समुद्र में जाने से घोर पाप लगेगा या वह नरकगामी होगा या स्वयं जल देवता प्रकट होकर उसे जल में समाधी दिला देंगे या कोई हिन्दू समुद्र में जाएगा तो वह पानी में गल जाएगा जैसी कई अन्य भ्रान्तियाँ ब्राह्मणी धर्म के अनुयायों में बैठी थी, जिस वजह से कोई भी हिन्दू सेनापति यह जिम्मेदारी लेने को तैयार नहीं होता था।

परंतु भारतीय धर्म परिवर्तित मुस्लिम सेना और सेनापति नूर खान ने अपनी पूरी सैन्य टुकड़ी लेकर क्षत्रपति शिवाजी महाराज को वचन दिया कि महाराज आप अपनी पूरी समुद्र और समुद्र तटीय सीमा की रखवाली करने की जिम्मेदारी मुझे दे दीजिये, मेरे जीते जी उस तटीय इलाके से कोई परिंदा भी पर नहीं मारेगा। उसके बाद क्षत्रपति शिवाजी महाराज ने उस नूर खान को अपनी समुद्र और समुद्री सीमा की जिम्मेदारी सौंप दी। जिसको

नूर खान ने बखूबी निभाया ही नहीं वरण अपने वचन पर शत प्रतिशत खड़ा भी उतरा।

शायद आप सभी पाठकों को महार, मांग जैसी सैन्य टुकड़ी की कार्य क्षमता पर शक हो सकता है, लेकिन ब्राह्मणों को कोई शक नहीं था। इसके लिए आपको थोड़ा सा पिछले इतिहास के साक्ष्यों को गौर से देखना होगा और देखने के बाद पाएंगे कि क्षत्रपति शिवाजी महाराज और उनके परिवार का साम्राज्य जैसे ही समाप्त हुआ और उसके बाद 'पेशवा (ब्राह्मण) साम्राज्य' का उदय हुआ तो सबसे ज्यादा इन्ही दो जातियों को ब्राह्मणों ने चुन–चुन कर निशाना बनाना शुरू कर दिया था। कहा जाता है कि ब्राह्मणों के अंदर बदले की ज्वाला इतनी ज्यादा धधक रही थी कि इन्होंने महार और मांग पर अमानवीय कृत्यों की अति कर दी थी। पूना शहर के सार्वजनिक रास्तों पर इन महारों को चलने की मनाही थी और अगर किसी दूसरे रास्ते से ये गुजरते थे तो इनके गले में थूकने हेतु हांडीं और चलने से बनने वाले पैरों के निशान को मिटाने हेतु कमर में झाडू बांधने का फरमान जारी कर दिया गया था। ब्राह्मणों के अंदर का गुस्सा सिर्फ ब्राह्मणी धर्म के गुलामों पर ही था। क्योंकि ठीक इसके विपरीत मुस्लिम धर्म के सैन्य टुकड़ी पर ये ब्राह्मण डर से कुछ कर नहीं पाए थे। ये सारी अमानवीय घटनाएँ अंग्रेजी शासन काल तक चलती रही। अंग्रेजी हुकूमत ने पेशवा शासन को अपने अधीन करने हेतु दबाव दिया था, जिसकी परिणति पेशवा और अंग्रेजों के बीच युद्ध के रूप में हुआ था। लेकिन इस युद्ध के साक्ष्य के रूप में एक कड़ी जनवरी 1818 ईस्वी में भीम–कोरेगांव का क्रांति स्तम्भ है जिसमे अकेले 500 महारों ने पेशवा के 25000 सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया था।

ये है "**क्षत्रपति शिवाजी महाराज जी की सैन्य ऊर्जा और ब्राह्मणी कुकृत्य की सच्ची गाथा**"

साभार :– सत्य शोधक समाज प्रबोधन,

लेखक :– आदरणीय अरविन्द माली जी (पेज नंबर 317 से 338 तक)

<u>आकलन नं0–10</u>

1757 ईस्वी के बाद व्यावहारिक रुप से (सैद्धांतिक रुप से 1857 तक भारत के शासक मुगल वंश के बादशाह बने रहे) भारतीय सत्ता मुगलों के हाथों से अंग्रेजों के पास पहुँच गयी थी। अंग्रेजी सरकार ने मुगल काल के जितने भी चाटुकार और दरबारी थे उनको निचले स्तर के चाटुकारिता के लिए रखा जबकि मुस्लिम जागीरदारों को भरोसेमंद चाटुकार के रुप में रख लिया। क्योंकि अंग्रेजों को मालूम पड़ गया था कि ये ब्राह्मण और राजपूत पहले अपने हिन्दू भाईयों को धोखा देकर मुगलों के दरबार में दरबारी का काम करते रहे हैं और उसके बाद मुगलों को धोखा देकर मेरे दरबार में दरबारी बनने आये हैं। इसलिए अंग्रेजों ने अपनी सत्ता व्यवस्था में सबसे ज्यादा बड़ी रियासतें मुगलों को दिया और बची हुई कुछ रियासतें राजपूत और ब्राह्मणों (पंडित + भूमिहार + त्यागी + कोखअंश) को दिया। इन रियासतों का काम सिर्फ किसानों से लगान वसूल कर अंग्रेजी सरकार को पहुँचाना था।

मुगल शासकों ने जिस प्रकार बलपूर्वक हिन्दुओं का इस्लामीकरण करने का काम किया था, अंग्रेज ठीक उसके विपरीत अपने ज्ञान और बुद्धि का उपयोग करते हुए सत्ता के साथ–साथ भारतीय समाज में ईसाईकरण फैलाने का काम किया। सबसे पहले उसने भारतीय हिन्दू समाज को बाँटने का काम शुरू किया। प्रथम बार 1872 ईस्वी में भारत में जनगणना अंग्रेजों (लॉर्ड मेयो) ने कराया था। यह जनगणना ब्राह्मणों की साजिश की वजह से मनुस्मृति में अंकित चार वर्णों के अनुसार करवायी गयी थी। जिसके तहत ब्राह्मण जातियाँ अपने आपको "ब्राह्मण वर्ण" में, मुगल काल और अंग्रेजी काल में रहे सैनिक, सेनापति, रियासतदार और जमींदार सभी ने अपने को "क्षत्रिय" वर्ण में तथा सभी प्रकार के व्यापारी "वैश्य वर्ण" में शामिल किए जबकि शेष बचे कृषक, पशुपालक एवं अन्य मेहनतकश लोगों को "शूद्र वर्ण" में शामिल किया गया।

अंतिम जनगणना भी 1931 ई0 में अंग्रेजों ने करवायी, जिसमें पहले हुई ‘‘वर्ण ’’ की जनगणना को अब जाति आधारित करते हुए ब्राह्मण वर्ण को ब्राह्मण जाति, क्षत्रिय वर्ण को राजपूत जाति एवं वैश्य वर्ण को 100 से भी अधिक उप जातियों में बाँटते हुए अंत में ‘‘शूद्र वर्ण’’ के अंदर 6500 से ऊपर उप जातियों का नामाकरण करते हुए भारतीय समाज को छिन्न–भिन्न कर दिया गया, जिससे खासकर पूरे भारत का कृषक वर्ग 1500 उपजातियों में बंटकर सबसे ज्यादा प्रभावित हुआ। इस विभाजन से अंग्रेजों को ब्राह्मणों द्वारा यहाँ की बनायी गयी झूठी वर्ण और जातीय व्यवस्था की कमजोरियों का पता चला।

ब्राह्मणों द्वारा स्थापित अव्यवहारिक भारतीय सामाजिक व्यवस्था को अब तक अंग्रेज काफी नजदीकी से समझ चुके थे। अंग्रेजों को इस बात का भी अहसास हो गया था कि भारत में मुगलों का इतना आक्रमणकारी रूख रखने और ब्राह्मणों तथा राजपूतों का सहयोग मिलने के बाद भी यहाँ की मुख्य हिन्दू आबादी का 90 प्रतिशत भाग मुगलों के जुल्म और गरीबी को सहना स्वीकार कर लिया, लेकिन अपनी सांस्कृतिक विरासत को छोड़ना स्वीकार नहीं किया।

इसके बावजूद पिछड़े, निर्धन और स्वाभिमानी हिन्दू की 70 प्रतिशत मुख्य आबादी पर अंग्रेजों की नजर टिक गयी थी। भारत की इस गरीब और स्वाभिमानी हिन्दू जनता के अंदर अपनी अंग्रेजी और ईसाईयत का झंडा बुलंद करने के लिए अंग्रेजों ने जाल बिछाना शुरू कर दिया। इसके लिए अंग्रेजों ने दो प्रकार की पद्धति का उपयोग किया–

(1) धार्मिक ग्रंथों को सुव्यवस्थित ढंग से अनुवादित कर उसके अंदर विवादित विषय को डाला और धार्मिक स्थलों की बनावट को छेड़–छाड़ कर उसको विकृत किया, ताकि कलांतर में समाज में नफरत और विवाद उत्पन्न हो।

(2) हिन्दू समाज के अंदर ब्राह्मणों द्वारा स्थापित ऊँच–नीच, छोटा–बड़ा सहित छुआ–छूत को बढ़ावा देकर समाज को बाँटा।

(1) पहले मकसद के लिए अंग्रेजों ने सबसे पहले अपने प्रकांड विद्धान ''लॉर्ड मैकाले'' को भारत में बुलाया। अंग्रेजों ने सबसे पहले लॉर्ड मैकाले को अपने अधीनस्थ ब्राह्मणों और रियासतदारों के द्वारा संस्कृत भाषा और भारत की जाति व्यवस्था की जानकारी दिलवाई। लॉर्ड मैकाले पूर्णरूपेण अपने को संस्कृत भाषा और भारत की संस्कृति को जानने और समझने में लगा दिया। भारत की धार्मिक और जातीय पद्धति जानने के बाद ''लॉर्ड मैकाले'' ने भारत की धार्मिक और सांस्कृतिक विरासत को चुन–चुन कर छिन्न–भिन्न करने का काम शुरू कर दिया। भारत के अंदर आज हमलोग जिस भी प्रकार के धार्मिक एवं सांस्कृतिक ग्रन्थों को देखते हैं या पढ़ते हैं, वे सारे के सारे उसी ''लॉर्ड मैकाले'' द्वारा निर्देशित और अंग्रेजों के अधीनस्थ ब्राह्मणों द्वारा पुनः लिखित और अंग्रेजों के अपने छापाखानों द्वारा मुद्रित और प्रकाशित हैं। अंग्रेजों ने ब्राह्मणों के सहयोग से भारतीय समाज के अंदर श्रुति ग्रंथों (काल्पनिक बातों) को मनमुताबिक अनुवाद कर लिखित ग्रंथों में बदलकर समाज के अंदर परोसा, जिससे खूद–व–खूद भारतीय समाज दिग्भ्रमित हो गया। प्राचीन ग्रंथों को ब्राह्मणों ने अंग्रेजों की सहायता से दूषित रूप से परिभाषित कर और कुछ नये ग्रंथों का अविष्कार कर स्मृति पुराण (पुराना) का नाम देकर समाज के बीच प्रसारित किये। जबकि वास्तविकता यह हैं कि उसके पूर्व (18वीं सदी के पूर्व) कुछ ही ग्रंथों का साक्ष्य ताड़–पत्र, भोजपत्र या उससे मिलते–जुलते पत्रों पर था, लेकिन आज के लिखित ग्रन्थ और पूर्व के कुछ मिले भोजपत्र में काफी अन्तर के साथ–साथ आधे–अधूरे भी हैं। अंग्रेजों ने भारतीय समाज के अंदर ब्राह्मणों के द्वारा दूषित ग्रंथों का प्रचार–प्रसार ब्रह्मा के द्वारा रचित व सनातन समय का कहकर जोर–शोर से करवाना शुरू कर दिया। भारतीय समाज में अंग्रेजों और ब्राह्मणों के द्वारा किया गया विषारोपण इतने अंदर तक बैठा दिया गया कि कुछ वर्षों बाद से ही ये सारी बातें पुरानी या कहें तो सभी को सनातन लगने लगी। इससे भारतीय समाज के अंदर

पूर्वजों की वंश परम्परा और धर्म परम्परा अपने से परायी (विदेशी) या मानसिक गुलामी वाली लगने लगी। इससे समाज के अंदर अपने पूर्वजों और धर्म से विश्वास उठने लगा। इसके परिणामस्वरूप समाज के अंदर नास्तिक लोगों का जन्म हुआ। समाज दो भागों में विभक्त हो गया (A) आस्तिक समाज (B) नास्तिक समाज। इन दो प्रकार के समाज को अंग्रजों ने आगे नए सिरे से उपयोग में लेने का काम किया।

इसके पूर्व मुगलों के समय में भी इस्लामीकरण के काल में भी मुगल और ब्राह्मणों ने मिलकर समाज में धार्मिक हीनता फैलाई थी। उस समय भी तुलसीदास और समकालीन अन्य विद्धानों ने धार्मिक ग्रंथों का विवादित अनुवाद किया था। लेकिन उससे भी कहीं ज्यादा धार्मिक विद्वेष अंग्रेजों के समय में फैलाई गयी, जिसकी बू अभी तक समाज से आती है।

अंग्रेजों ने 1800 आस पास के 18वीं–19वीं सदी के विश्वविख्यात वास्तुशास्त्री और ब्रिटिश इंजीनियर ई0 कैप्टेन टी0 एस0 बर्ट को भारत बुलाया। भारत में मुगलों के द्वारा काफी मंदिरों को नष्ट कर उस जगह पर मस्जिद बनाने के बाद भी कुछ नष्ट मंदिरों का अवशेष बच गया था। ई0 कैप्टेन टी0 एस0 बर्ट के निर्देशन में उसकी मरम्मत (Renovation) की गई। हर मंदिर के ऊपर या अंदर गलत तरीके के दृश्य और नक्काशी के काम करवाए गए। आधार (Krishna Deva (1990), Temples of Khajuraho, 2 Volumes, Archaelogical Survey of India, New Delhi) (Louise Nicholson (2007) India, National Geographic Society, see Chapter on Khajuraho) ताकि समाज के अंदर आने वाले समय में तीव्र भ्रम उत्पन्न हो जाय। इसी का जीता–जागता उदाहरण है – खजुराहो मंदिर। ऐसे अनेक छोटे–बड़े मंदिर भारत में विराजमान हैं। कुछ वर्षों उपरांत ब्राह्मणों द्वारा समाज में उन सब दृश्यों को लेकर काल्पनिक कहानियों द्वारा भ्रान्तियाँ

फैलाना शुरू कर दिया गया, जिससे समाज के अंदर अपने धर्म या धर्म स्थलों या पूर्वजों की सोच और मानसिकता पर नफरत का वातावरण उत्पन्न होना शुरू हो गया। इस तरह अंग्रेज अपने मकसद में कामयाब होते चले गए।

(2) अंग्रेजों का मकसद हिन्दू समाज के अंदर ऊँच–नीच, छूत–अछूत का भाव उत्पन्न करना था। इसके लिए ब्राह्मणों और रियासतदारों का भरपूर उपयोग किया गया। इसके तहत रियासतदारों के द्वारा समाज के निचले स्तर तक जुल्म करवाना शुरू कर दिया गया। इसी समय 1820 ई0 में अंग्रेज ''सर टॉमस मुनरो'' के द्वारा भारतीय खेती की जमीन के ऊपर रैयतवाड़ी व्यवस्था लागू किया गया। जबकि इसके पूर्व 1786 के बाद से ही उत्तरी भारत में जमींदारी पद्धति लागू कर दी गई थी। जिसका उद्देश्य था – रियासतदारों के द्वारा आम जनता की संपत्ति (खेती की जमीन) पर जबरदस्ती कब्जा कर बेदखल कर देना, जिससे कि समाज की आर्थिक स्थिति छिन्न–भिन्न हो जाय और उनका अधिकतम आर्थिक शोषण संभव हो सके। रियासतदारों और उसके माताहत जमींदारों के जुल्म से भारतीय समाज कुछ वर्षों बाद पूर्णरूपेण गरीबी के दलदल में जा पहुँचा। भारतीय समाज के अंदर सबों के लिए ऊँची शिक्षा पर पाबन्दी जैसी स्थिति बना दी गयी थी। उस काल में रियासतदार और जमींदार या दरबारी के बच्चे या उनकी अनुशंसा पर ही अनुशंसित व्यक्ति उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकता था। अब एक तरफ गरीबी का दंश और दूसरी तरफ अशिक्षा का दंश समाज को कमजोर करने लगा। भारतीय समाज में अमीरी–गरीबी और शिक्षा–अशिक्षा का फासला काफी बढ गया था। गरीबी–अमीरी, शिक्षा–अशिक्षा का फायदा उठाते हुए अंग्रेजों ने ब्राह्मणों के द्वारा समाज में छुआ–छूत, स्वर्ण–अवर्ण, कठोर वर्ण व्यवस्था जैसी अनेक कुरीतियों का दुष्प्रचार करना और समाज पर थोपना चालू कर दिया। परिणामस्वरूप भारतीय समाज बिल्कुल ही कमजोर और टूटने के कगार पर पहुँच गया।

अंग्रेजों ने भारतीय समाज में छूत–अछूत, स्वर्ण–अवर्ण और वर्ण व्यवस्था के कारण बाँटों और ईसाईयत फैलाओ की नीति अपनायी। अंग्रेज उस समाज के सबसे ज्यादा अशिक्षित, गरीब और पीड़ित वर्ग के पास जाकर हिन्दू धर्म और तत्कालीन ब्राह्मणवादी व्यवस्था के प्रति नफरत फैलाने का काम शुरू किया और उस पीड़ित समाज को पहले अपने विश्वास में लेने का काम किया। इससे अंग्रेजों के प्रति सबसे गरीब और अशिक्षित समाज को अपनापन महसूस होने लगा था। इसके लिए अंग्रेजों ने पूरे भारत के अंदर भोले–भाले गरीब, सबसे अशिक्षित और उस समय के सबसे अछूत माने जाने वाले इलाकों में जाकर ईसाई संगठनों (मिशनरियों) की स्थापना करना शुरू कर दिया। उसके बाद अंग्रेजों ने ईसाई धर्म को स्वीकार करने का हर प्रकार का प्रलोभन और आश्वासन देना शुरू कर दिया। पीड़ित वर्ग को एक तरफ अंग्रेजों का अपनापन और दूसरी तरफ अंग्रेजों के द्वारा दिए गए प्रलोभन ने पूरी तरह प्रभावित किया। अब ईसाई मिशनरियों द्वारा जोऱ–शोर से हिन्दू से ईसाईकरण का कार्य शुरु हो गया, जो आज भी आपके सामने मौजूद है।

परंतु भारतीय समाज का बहुसंख्यक गरीब, अशिक्षित, अवर्ण, अछूत, न जाने क्या–क्या समझे जाने वाले हिन्दू वर्ग के परिवार अपने आप को अभी भी ईसाई बनना स्वीकार नहीं कर पा रहे थे। इसके लिए ब्राह्मणों ने अंग्रेजों के द्वारा हिन्दू वर्ग के गरीब, अछूत और अशिक्षित समाज से सम्मानीय कुशाग्र और तेज मस्तिष्क वाले युवकों को शिक्षा दिलवाने का काम किया और उनके शिक्षा प्राप्त कर लेने के उपरांत अंग्रेज अपने ढाल के रूप में उन्हीं गरीब, अछूत और शिक्षित व्यक्ति का उपयोग करने लगे। अब गरीब, अछूत और अशिक्षित समाज के बीच में उस शिक्षित व्यक्ति को नेतृत्वकर्त्ता के रूप में लाने का काम शुरू हो गया। इससे इस गरीब, अशिक्षित, अवर्ण और अछूत समाज को लगने लगा कि अपने बीच मानों एक ईश्वर का दूत आ गया है, जो

पूरे समाज का दु:ख–दर्द जल्द खत्म कर देगा। ऐसा ही कुछ सोचकर भारतीय अवर्ण समाज ने अपने अवर्ण नेतृत्वकर्त्ता पर भरोसा करना शुरू कर दिया, जिससे अंग्रेजों को अपनी स्वार्थ सिद्धि पूरी होती दिखाई देने लगी थी। इसे आप भी स्वतः समझ सकते हैं कि जिस अंग्रेजी सरकार के समय में बिना रियासतदार, जमींदार या अंग्रेजी हुकूमत की अनुमति के कोई शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकता था, तो ये अवर्ण लोग कैसे शिक्षा प्राप्त कर लिए? दूसरी बात कि इनके माता–पिता इतने गरीब थे, तब ये इतनी महंगी और विदेशी शिक्षा कैसे प्राप्त कर लिए?

अब आप स्वयं निर्धारित कीजिए कि जिस अंग्रेजी सरकार और उसके चाटुकार रियासतदार की मदद और सहायता के बिना एक परिंदा भी पर नहीं मार सकता था, तो ये गरीब, अवर्ण और अछूत समाज के महान आत्माओं के पीछे कौन था?

सोचिये?

आकलन नं0–11

अंग्रेज मुगलों से ज्यादा शोषक, समझदार और व्यवस्थित रूप से शासन चलाने वाले लोग थे। इसलिए पहले के मुगल शासन में लगान वसूल करने की प्रक्रिया में परिवर्तन करते हुए नयी व्यवस्था बनायी, जिसके अंतर्गत निचले स्तर का जमींदार यदि अपने कार्यो के प्रति ईमानदार नहीं होता था या उसकी लापरवाही दिखती या किसी भी प्रकार की लगान वसूल प्रक्रिया में कमी दिखती, तो उसकी जमींदारी को बेचा या नीलाम किया जा सकता था और उस नीलामी प्रक्रिया में उस इलाके का कोई भी व्यक्ति भाग ले सकता था। इसी वजह से बाद के समय में कुछ कृषक रैयत परिवार (आज का पिछड़ा समाज) भी इस नयी जमींदारी प्रक्रिया में भाग लेकर उस जमींदारी का कुछ भाग खरीद कर जमींदार बनने लग गया था।

दूसरी ओर सामंती सोच वाले अंग्रेजों का साम्राज्य लगभग पूरे विश्व पर था और भारत अंग्रेजों का एक प्रमुख उपनिवेश था। भारत के अन्दर व्याप्त सामाजिक कुरीतियों की चर्चा पूरे विश्व में हो रही थी। जिसकी वजह से अंग्रेजी सरकार की काफी बदनामी के साथ–साथ उस पर काफी दबाव भी विश्व स्तर पर हो रहा था। अंग्रेज सरकार ने उस बदनामी से बचने के लिए कुछ ब्राह्मणीं कुरीतियों को बंद भी करवाये थे। जिसकी वजह से ब्राह्मणों के अन्दर कुछ नाराजगी भी फैली थी और इधर शोषितों के अन्दर अंग्रेजी सरकार के प्रति अपनापन वाली वहम की विचारधारा भी बन गई थी, जो बिलकुल ही निराधार व बेबुनियाद थी।

इन दो वजहों से अंग्रेजी शासन काल में भारत में कुछ अमूल चूल परिवर्तन की शुरुआत देखने को मिलती है।

प्रथम तथ्य – कुछ किसान परिवार के लोगों ने लगभग 1800 ईस्वी के बाद से मेहनत और बचत करते हुए अंग्रेजी सरकार के अंदर एक आना से लेकर सोलह आना (उस जमाने की एक प्रकार की हिस्सेदारी मापने का तरीका) तक की जमींदारी खरीदी। इसके प्रमाण के रूप में देश के कुछ भागों में नए प्रतिष्ठित जमींदार परिवारों को आज भी देख सकते हैं।

द्वितीय तथ्य – अंग्रेजी सरकार को समाचार पत्रों के माध्यम से और सामाजिक संगठनों के दबाव में आकर नहीं चाहते हुए भी अपने अधीनस्थ दरवारी और रियासतदारों के ऊपर कुछ बंदिशों को लगाना पड़ा, जिसकी वजह से इन दरवारी और रियासतदारों ने अपने स्वामी अंग्रेजों के विरूद्ध आवाज भी उठाई थी।

उस अंग्रेजी विस्तारवादी साम्राज्य के पीछे अंग्रेजों की दो सोच हमेशा रही थी– पहला उस देश का आर्थिक दोहन करना और दूसरा उस देश में अपनी धार्मिकता (ईसाईयत) का विस्तार करना।

क्या मैं सही कह रहा हूँ?

आप स्वयं भी इस विषय को देख और समझ सकते हैं।

भारतीय समाज के अंदर अंग्रेजों द्वारा स्वयं और अब अपने नए और पुराने अनुयायियों (जमींदार) के द्वारा इतना अत्याचार करने के बाद भी ईसाईयत धर्म को स्वीकार करने का काम ज्यादा फलीभूत होता नहीं दिख रहा था। तब अंग्रेजों ने दूसरी रणनीति का प्रयोग करना शुरू कर दिया।

अपनी दूसरी रणनीति के तहत अंग्रेजों ने भारतीय हिन्दू समाज के सभी वर्गों पर अपने दरबारी और रियासतदार–जमींदारों के द्वारा अत्याचार करवाना शुरू कर दिया। जिसके परिणामस्वरूप यहाँ के दरबारी और रियासतदारों से भारतीय हिन्दू जनता नफरत करने लगी। दूसरी तरफ अंग्रेजों ने दरबारी और रियासतदारों के अत्याचार से दुखित समाज के बीच जाकर उस समाज के प्रति अपनी झूठी हमदर्दी दिखाते हुए दरबारी और रियासतदारों को भला–बुरा कहना शुरू कर दिया, जिससे हिन्दू समाज के प्रताड़ित और तिरस्कृत लोग अंग्रेजी सरकार को अपना हितैषी और संरक्षक समझने लगा।

अंग्रेजों को अपनी चालबाजी सफल होती दिखने लगी थी। वे सारे लोग अंग्रेजी सरकार को आशा भरी नजरों से देखना शुरू कर दिये थे। अंग्रेजों ने इन्हीं सब का लाभ लेते हुए हिन्दू समाज के नव सामंत जमींदार, गरीब और तिरस्कृत वर्गों में से कुछ योग्य और कुशल नवयुवकों का चुनाव किया और इन नवयुवकों को अंग्रेजी शिक्षा और अपना ज्ञान, भारत या भारत से बाहर अपने खर्चे पर दिलवाया। शिक्षा ग्रहण करते–करते ये नवयुवक अंग्रेजी शिक्षा और अंग्रेजों की विचारधारा से काफी प्रभावित हुए। शिक्षा ग्रहण कर लेने के बाद इन नवयुवकों को अपने गरीब और तिरस्कृत समाज में मान–सम्मान और आदर काफी बढ़ गया था। इन सब तथ्यों को देखते हुए अंग्रेजों ने इन नवयुवकों को अपने–अपने समाज का नेतृत्वकर्त्ता के रूप में पेश किया। कुछ ही दिनों में ये नवयुवकगण, गरीब और तिरस्कृत समाज के सफल नेतृत्वकर्त्ता बन गए। अब ये नेतृत्वकर्त्ता महाशयगण नव जमींदार, गरीब और तिरस्कृत समाज के अंदर अंग्रेजी शिक्षा के महत्व के साथ–साथ अंग्रेज और अंग्रेजियत को भी अपने समाज हित का नाम देकर प्रसारित

करने लगे। इसका नव जमींदार, गरीब और तिरस्कृत समाज पर महत्वपूर्ण प्रभाव देखने को मिला। अब नव जमींदार, गरीब और तिरस्कृत समाज अंग्रेजों को अपना ज्यादा हिमायती समझने लगा था।

आरंभ में भारत में अंग्रेजी सरकार का केवल दरबारी और रियासतदारों पर ही प्रभाव था, लेकिन अब सबसे ज्यादा भारतीय आबादी वाले नव जमींदार, गरीब और तिरस्कृत वर्ग पर भी इन नायक या नेतृत्वकर्त्ताओं के माध्यम से प्रभाव कायम हो गया। मरता क्या नहीं करता ? अब नव जमींदार, गरीब और तिरस्कृत वर्ग को लगने लगा कि दरबारियों और रियासतदारों के जुल्म से अंग्रेज ही बाहर निकाल सकतें हैं। अब गरीब और शोषित वर्गों के अंदर अंग्रेजों के लिए "गरीबों का हिमायती" का नारा बुलंद होने लगा।

एक कहावत है – शिकारी आएगा, जाल बिछाएगा, उस जाल में फँसना नहीं। लेकिन ठीक उसके विपरीत इस शिकारी (अंग्रेज) के बुने हुए जाल में नव जमींदार, गरीब और शोषित वर्ग फँस गया।

अंग्रेजी सरकार के समय में शोषित वर्ग से जितने भी नायक हुए, सबों के अंदर एक अच्छी सोंच थी। सबों के अंदर समाज के लिए कुछ करने का जोश और जज्बा था। विपरीत परिस्थितिओं में भी इन नायकों ने समाज के लिए आवाज बुलंद किया। लेकिन अंग्रेजों की बुद्धिमानी और अंग्रेजी शिक्षा के आगे उनकी एक नहीं चली।

परिणामस्वरूप समाज दो भागों में विभक्त हो गया।

पहला वर्ग नव जमींदार वर्ग था, जो अपने विरूद्ध साजिश करने वाले या करवाने वाले (दरबारी और रियासतदार) के विरूद्ध खड़ा हो गया, क्योंकि उस समाज की सोंच थी कि हमलोग अपने पूर्वजों की दी हुई इस ब्राह्मणी संस्कृति और विरासत को नहीं छोड़ेंगे। इसके लिए हमेशा हमलोग लड़ेंगे। जो आज भी आपको देखने को मिलता है।

दूसरा वर्ग वह था, जो अपने विरूद्ध साजिश करने वाले या करवाने वाले (अंग्रेज, दरबारी और रियासतदार) से दूरी बनाकर रहा क्योंकि इनके अनुसार हमारे पूर्वजों की इस ब्राह्मणी संस्कृति और धर्म में भागीदारी नहीं थी, इसलिए हमलोग इस ब्राह्मणी संस्कृति और धर्म दोनों से दूर रहेंगे। इसके बाद धीरे–धीरे स्वेच्छा से इस विचारधारा वाले लोग इस समाज या ब्राह्मणी धर्म–संस्कृति को छोड़कर अन्यत्र चले गए और वर्तमान में भी जा रहे हैं। जैसे बौद्ध अथवा ईसाई धर्म की ओर पलायन।

मैं सही कह रहा रहा हूँ न?

पहला वर्ग – पहले वर्ग की सोच थी कि 1000 ईस्वी के बाद से ही भारत के अंदर मुस्लिम व अंग्रेजी शासक और इन दोनों के दरबारी एवं रियासतदार आदि ने प्राचीन काल से स्वच्छ भारतीय वातावरण को गन्दा किया था,और वह सदियों पुराना स्वच्छ समाज, हमारे पूर्वजों का था। उसी समाज में 1000 ईस्वी के पहले ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, राम–सीता, लव–कुश, कृष्ण–बलराम, अर्जुन–भीम, महर्षि बाल्मिकि–महर्षि व्यास, जैसी अनेक विभूतियों का योगदान रहा था।

क्या हमलोग उस सुन्दर समाज को छोड़कर अलग हो जायें या फिर अपने पूर्वजों के सुन्दर और स्वच्छ समाज को गन्दा करने वाले साजिशकर्त्ता को बेनकाब करते हुए उनकी गन्दी मानसिकता से समाज को मुक्त कराते हुए अपने सदियों पुराने समाज को फिर से "राम काल" जैसा बनाए! इन्हीं सब सोचों और लक्ष्य के साथ पहले वर्ग का समाज, मुगल और अंग्रेजों के समय से ही दरबारी और रियासतदारों से जूझ रहा है। वर्तमान में पहले वर्ग ने मुगल और अंग्रेजों के दरबारी और रियासतदार वर्ग के वंशजों (ब्राह्मण–राजपूत) के समानांतर शिक्षा एवं अर्थ प्राप्त कर उनकी दमनकारी व सामंतवादी प्रवृत्ति की नकल करना शुरू कर दिया है। इन सारे तथ्यों को आप भी देख और समझ सकते हैं।

दूसरी तरफ दूसरा वर्ग अपने ऊपर साजिश करने वाले दरबारी और रियासतदारों से दूरी बनाकर रहने लगा। कालांतर में इस वर्ग से समय–समय पर काफी अच्छे नेतृत्वकर्त्ता पैदा हुए। लगभग सभी नेतृत्वकर्त्ता उस विपरीत परिस्थिति में भी उच्च अंग्रेजी शिक्षा देश–विदेश से ले रखे थे। उस समय अंग्रेजी एवं देशी सरकार (दरबारी, रियासतदार, गवर्नर) से बिना अनुमति लिए उच्च शिक्षा प्राप्त करना बहुत ही कठिन था। परन्तु ये अंग्रेजों के इशारे पर ही शिक्षा ग्रहण किये थे और अंग्रेजी सरकार के पूर्ण समर्थक थे। ऊँची शिक्षा और सफल नेतृत्व की वजह से इनको अपने शोषित और वंचित समाज में बहुत ही सम्मान भरे दृष्टिकोण से देखा जाता था। शोषित और वंचित समाज को इन नेतृत्वकर्त्ताओं ने सफल नेतृत्व भी प्रदान किया, परन्तु ये अंग्रेजों के कुटिल रणनीति के कारण हमेशा विवश और लाचार बनकर रहे। परिणामस्वरूप इस समाज में आगे चलकर तीन प्रकार (A, B, C) की विचारधाराओं का उदय हुआ, जो क्रमशः निम्न है :–

प्रथम (A) इस विचारधारा के नेतृत्वकर्त्ताओं की सोंच थी कि क्यों नहीं हमलोग अंग्रेजों की ईसाईयत धर्म स्वीकार कर अंग्रेजों के साथ हो जाएँ। द्वितीय (B) प्रकार के नेतृत्वकर्त्ताओं की सोंच थी कि हम दरबारी और रियासतदार वर्ग से दूरी बना लें और ईसाईयत धर्म से भी दूरी बनाते हुए अपनी पूर्व की प्रमाणिक गौतम बुद्ध और सम्राट अशोक वाली पुरानी संस्कृति जो गैर ब्राह्मणवादी परिपाटी की है (बौद्धिक) उसे अपना लें। तृतीय (C) प्रकार के नेतृत्वकर्त्ताओं की सोंच थी कि क्यों न हमलोग इन (ईसाई, बौद्ध, हिन्दू) तीनों से दूरी बनाकर नास्तिकवादी बन जाएं।

अंग्रेज अपनी इन उपलब्धियों पर बहुत ही प्रसन्न थे। जो काम मुगल शासक 700 वर्षों में जबरदस्ती आतंक के जरिए नहीं कर पाये, उस काम को अंग्रेजों ने 100 से 150 वर्षों में अंजाम दे दिया। समाज में ''फुट डालो राज करो'' शायद यह पंक्ति अंग्रेजों के दरबारी लेखक ने लिखा था। लेकिन मैं तो कहता हूँ कि अंग्रेजों ने अपने और अपने दरबारी व रियासतदारों के द्वारा समाज में ''फुट डालो ईसाईयत फैलाओ'' का काम ज्यादा किया था। ईसाईयत के प्रचार–प्रसार से अंग्रेज काफी खुश थे।

(A) विचार के नेतृत्वकर्त्ता थोड़ी लोभी प्रवृत्ति के भी थे। जिसकी वजह से अंग्रेजों को इन नेतृत्वकर्त्ताओं को फाँसने में ज्यादा कठिनाई नहीं हुई। पूरे भारतीय समाज के अंदर (A) विचार के नेतृत्वकर्त्ताओं के सहयोग से शोषित एवं वंचित समाज के बीच में जगह–जगह ईसाई मिशनरी की स्थापना होने लगी। (A) विचार के नेतृत्वकर्त्ता अपनी लोभी प्रवृत्ति के कारण अंग्रेजों से अपना निजी फायदा उठाते हुए समाज के अंदर अंग्रेजी शासन और अंग्रेजियत को समाज हित में बताना शुरू कर दिया। इसके अतिरिक्त विचारकों ने अंग्रेजों से प्रभावित होकर अपने पूर्वजों की धार्मिक सभ्यता और संस्कृति को त्याग कर, अंग्रेजों द्वारा लायी गयी नयी धार्मिक सभ्यता और संस्कृति को स्वीकार कर लिया। अब शोषित एवं वंचित समाज के लोग अंग्रेज और अंग्रेजों के दरबारी व रियासतदारों के द्वारा फैलाये गये झूठे अफवाहों के जाल में फँसकर, अपने–आप को ईसा मसीह की सभ्यता से जोड़कर देखने लगे और अपने समाज को झूठी तसल्ली देकर अपने आप को संतुष्ट करने लगे।

दूसरी ओर (B) विचारधारा के समर्थकों के अंदर भी (A) विचार के नेतृत्वकर्त्ताओं के जैसे अनेक नेतृत्वकर्त्ता हुए। (B) विचार के नेतृत्वकर्त्ता अंग्रेजी सरकार की छल–नीति के प्रभाव में अंग्रेजों से प्रभावित थे क्योंकि उनकी शिक्षा–दीक्षा अंग्रेजों के ही भरोसे हुई थी। लेकिन ये लोग शोषित और वंचित समाज को लेकर ईसाईयत के साथ जाना नहीं चाहते थे। साथ ही (B) विचार के नेतृत्वकर्त्ता अंग्रेजों के सामंती, दरबारी और रियासतदारों से भी दूरी बनाकर रहना चाहते थे। अंग्रेजों ने कुटिल साजिश के तहत अपने दरबारी और रियासतदारों के द्वारा हिन्दू समाज के अंदर परित्यक्त और ब्राह्मणवादी व्यवस्था बनाकर इस समाज को उद्वेलित कर रखा था, जिसकी वजह से लगभग 1900 ईस्वी के बाद में काफी संख्या में लोग अपने नेतृत्वकर्त्ता के साथ बौद्ध मतावलम्बी हो गए थे। इस बौद्ध सभ्यता के अंदर ये अपने पूर्वजों की सभ्यता–संस्कृति की भीनी खुशबू और उनकी यादों का आनंद लेना शुरू कर दिए और साथ ही अपने आप को ब्राह्मणवादी

कर्मकांडी व्यवस्था से भी दूरी महसूस करने लगे। इन सारी बातों को आज आप भी महसूस कर सकते हैं।

तीसरी (C) विचारधारा के नेतृत्वकर्त्ता स्वाभिमानी एवं आदर्शवादी थे। ये हमेशा से ही अपनी शोषित और वंचित समाज–हित के लिए ब्राह्मणवादी कर्मकांडी व्यवस्था के खिलाफ लड़ाई लड़ते चले आ रहे हैं। (C) विचार के नेतृत्वकर्त्ता भी अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था से काफी प्रभावित थे लेकिन ये नेतृत्वकर्त्ता अंग्रेजों के दरबारी और रियासतदारों के द्वारा प्रचारित हिन्दू धर्म की गलत वर्ण व्याख्या और उनके गरीबों के प्रति शोषणकारी कार्यों से ऊब गए थे, जिसकी वजह से इनके हृदय में धर्म के प्रति काफी नफरत उत्पन्न हो गई थी। इस कारण (C) समाज के नेतृत्वकर्त्ताओं के पास सामंतवादी कर्मकांडी व्यवस्था के साथ रहने की किसी भी प्रकार की कोई गुंजाइश ही नहीं बची थी। परिणामस्वरूप (C) विचार के नेतृत्वकर्त्ता अपने सभी समर्थकों सहित मानव–मानव का कल्याण की सोंच रखते हुए मानवतावादी व्यवस्था को अपनाकर हर प्रकार के धर्म और कर्मकांड से दूर नास्तिकतावाद को अपनाते हुए समाज में अपना स्थान बनाने के लिए संघर्ष करने लगे।

परन्तु बाद में शोषित और वंचित समाज के अंदर शिक्षा और आर्थिक स्थिति मजबूत होने की वजह से नास्तिकतावादी सामाजिक वातावरण में अपनी पहचान को खोना शुरू कर दिए है। इन सारी बातों को आप आज भी महसूस कर सकते हैं।

उपरपोक्त समस्त घटना क्रम के बीतते–बीतते भारत देश अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त हो गया। स्वतंत्रता बाद अपना समाज मुगल, अंग्रेज, रियासतदार, जमींदार और दरबारिंयों की शारीरिक और आर्थिक गुलामी से मुक्त तो हो गया, परन्तु इन आताताययों का 900 वर्षों के मानसिक गुलामी का जो मजबूत जड़ बना हुआ था उसका दुरूपयोग अब दूसरे प्रकार से हरेक भारतीय समाज का नेतृत्वकर्त्ता अपने–अपने समाज में करने लगा है।

अब भारत लोकतांत्रिक देश बन गया है। अब यहाँ राजशाही पद्धति समाप्त हो गयी है। बाबा साहेब द्वारा लिखित संविधान के कारण आजाद भारत में अब सामंतवादी प्रवृत्ति भी धीरे–धीरे कम होने लगी है। भारतीय समाज के लोग अब अपनी–अपनी शैक्षणिक, सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता का उपयोग करने लगे हैं। अब पहले वाले न लेखक हैं न ही पाठकगण। पहले लेखक या पंडित की उक्ति थी कि "भारत में लेखक या पंडित अपनी बुद्धिमानी से ज्यादा समाज में व्याप्त अशिक्षा और गरीबी की वजह सर्वश्रेष्ठ बन बैठा है"। यह उक्ति आज के सामाजिक परिवेश में कुछ–कुछ बदलती दिख रही है।

परन्तु उस समाजिकता का रूप आज के परिवेश में कुछ क्षुद्र राजनीतिज्ञों ने अपने सत्ता लोभ हेतु बिल्कुल ही बदल के रख दिया है।

भारतीय समाज की (दलित, पिछड़ा, स्वर्ण) जातिगत व्याख्या अब लेखक या पंडित की बातों से ज्यादा समाज में क्षूद्र राजनीतिज्ञों की वजह से अंगीकार है, जिसको समय–समय पर इन नेताओं के द्वारा सत्ता स्वार्थ हेतु भावनात्मक रूप से समाज में प्रचारित भी किया जाता है।

इन सभी राजनीतिक पार्टियों के बड़े नेताओं को यदि समाज हित की इतनी ही चिंता है, तो जिस प्रकार से अपने लिए राजशाही खत्म करके राजा का पद कोई भी योग्य व्यक्ति चुनाव जीत कर धारण कर (मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री) सकता है, उसी प्रकार पूरे भारतीय समाज हेतु एक नयी सामाजिक बनावट क्यों नहीं पेश करते हैं, जिसके तहत किसी भी समुदाय का कोई भी व्यक्ति शिक्षा प्राप्त कर अपनी मर्जी से किसी भी प्रकार का पूजा–कर्मकांड कर सकता है या करा सकता है। आज पूजा–कर्मकांड में सबसे पुरानी आरक्षण व्यवस्था को हटाकर उसके अंदर शिक्षित व सुयोग्य व्यक्ति को क्यों नहीं लाया जाता है? किसी खास वर्ग की गुलामी को समाप्त क्यों नहीं किया जाता है?

आजादी के बाद भी भारतीय व्यवस्था के अंदर अंग्रेजी सरकार के चापलूस व्यक्तियों का ही बोल–बाला रहा है। उसीका परिणाम है कि आज

आजाद भारत में भी चापलूस व्यक्तियों ने अपने–अपने जातीय हित को सर्वोपरि रखते हुए देश की दो सर्वोच्च संस्थाओं में अपने मनोनुकूल स्थिति को बनाये रखा है। पहली संस्था देश की सत्ता या शासन की है, जिसमें बिना किसी योग्यता के किसी भी व्यक्ति को सत्ता में बिठाना और दूसरी व्यवस्था भारतीय समाज की सर्वोपरि धार्मिक सत्ता व्यवस्था है। उसमें भी बिना किसी योग्यता के पुस्तैनी आधार मानकर उस व्यक्ति से धार्मिक अनुष्ठान करवाना या उसी से जानकारी लेना है। अब आप ही बतायें, क्या बिना किसी जानकारी और योग्यता के कोई व्यक्ति किसी प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान या सत्ता व्यवस्था को चला सकता है क्या?

देश के कर्णधारों से भी जानना चाहता हूँ कि जब देश की जनता की इतनी बड़ी जरूरत को बगैर किसी योग्यता के किसी भी व्यक्ति को किसी भी राज्य का गवर्नर बना सकते हो या अन्य प्रकार का लाभ दे सकते हो और बगैर किसी योग्यता के किसी भी व्यक्ति को धर्म का व्याख्यान या अन्य प्रकार का अनुष्ठान करवाने की खुली छूट दे सकते हो, तो क्या अपने लिए भी बहुत छोटी सी जरूरत को किसी से भी करवा सकते हो क्या? जैसे – 1) आप अपने बहुत ही कुशल ड्राइवर के लड़के को जो बहुत ही बड़ा शराबी है, उसको अपने पत्नी और बच्चे हेतु ड्राइवर रख सकते हो क्या? 2) आप अपने गुरूदेव के लड़के को जो बहुत ही बड़ा जुआरी है, उसको अपने बच्चे हेतु घर का शिक्षक बना सकते हो क्या? 3) आप अपने प्रतिष्ठान हेतु खजांची के लिए अपने पूर्व के खजांची के अनपढ़ पुत्र को रख सकते हो क्या? ऐसे अनेकों सवाल है जिसको कोई भी अनुभव कर सकता है, आप जैसे नायक कैसे अनुभव नहीं किये या किये तो किसी की तरफदारी कर रहे हो क्या? आज के समय में तमाम तथाकथित समाज के अग्रज और बुद्धिजीवियों पर यह तथ्य प्रश्न चिन्ह खड़ा कर रहा है।

मेरा विश्लेषण व तर्क आपको सत्य प्रतित हो रहा है न।

आकलन नं0–12

आज भारत की शिक्षित युवा पीढ़ी के लड़के या लड़कियाँ, दोनों ही अपने विचारों से भारतीय समाज को काफी प्रभावित कर रहे हैं। इन युवाओं के अंदर से आज जो विचार निकल कर आ रहा है, उसमें दो प्रकार के मतों को स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है।

पहला मत – ऐसे नवयुवकों या नवयुवतियों का है जो पुरातन पंथी ब्राह्मणवादी व्यवस्था और सामंतवादी व्यवस्था को मानने वाले परिवार या उस विचारधारा के पोषक रहे समाज में उत्पन्न होकर पलने और बढ़ने वाले लड़के–लड़कियों का हैं। ये अपने पूर्वजों के उस ब्राह्मणवादी और सामंतवादी व्यवस्था के अंदर की जिंदगी और उस सामंतवादी जिंदगी के तानाशाही राज को देखा है। ऐसे घरों के बच्चे भी अपनी स्वयं की जिंदगी में उस तानाशाही जिन्दगी को आगे बढ़ाते हुए, अपने आस–पास के मित्रों और सहजनों को अपने पूर्वजों की दन्त कथा और स्मृति कथा से प्रभावित करने का प्रयास करते रहते हैं। जैसे कि इन सारी दन्त कथाओं के समय उनके पूर्वज खड़े होकर देख रहे थे। मैं आज के उन साफ और निश्छल दिलवाले नवयुवकों या नवयुवतियों से जानना चाहता हूँ कि क्या आपने अपने पूर्वजों या श्रुति स्मृति पुराणों के माध्यम से जो जानकारी हासिल कर अपने मित्रों को बता रहें हैं, उसका कोई प्रमाणिक तथ्य दे सकते हैं? जैसे –(1) मनु काल की कोई निश्चित समय सीमा बता सकते हैं क्या? (2) ब्रह्मा, विष्णु, महेश, शिव, परशुराम के काल की कोई निश्चित समय सीमा बता सकते हैं क्या? (3) महाभारत काल की कोई निश्चित समय सीमा या पुरातात्विक साक्ष्य बता सकते हैं क्या? (4) गीता काल की कोई निश्चित समय सीमा बता सकते हैं क्या? (5) राम काल की कोई निश्चित समय सीमा बता सकते हैं क्या? ऐसे अनेकों प्रश्न हैं? आप मेरे प्रश्न देखकर जरूर महसूस कर रहे होंगे कि शायद यह नास्तिक या गैर हिन्दू व्यक्ति के द्वारा पूछे गये प्रश्न हैं, जिसका उत्तर देना या इन सब बातों में उलझना उचित नहीं है। परन्तु ऐसा

कुछ भी नहीं है, मैं नास्तिक नहीं हूँ और ना ही मैं किसी दूसरे धर्म से सम्बन्ध रखता हूँ, मैं विशुद्ध रूप से आस्तिक हूँ और हिन्दू भी हूँ। और न ही मैं इन प्रश्नों के माध्यम से अपने इष्ट देवता और परमात्मा पर कोई प्रश्न वाचक चिन्ह लगा रहा हूँ। लेकिन प्रश्न तो है, परंतु ये प्रश्न सिर्फ सामंतवादी और ब्राह्मणवादी व्यवस्था पर हैं। मैं तो समाज में आप लोगों के द्वारा उस सामंती और ब्राह्मणवादी बातों के फैलाये गए दुष्प्रचार के लिए जवाब में इन प्रश्नों का उपयोग किया हूँ। मैनें ऊपर में आप लोगों से 5 प्रश्न किया है – क्या किसी भी प्रश्न का जवाब आप निश्चित समय तारीख महीना साल में दे सकते हैं? नहीं न! तब फिर कैसे आप और आपका समाज दावे के साथ कहता है कि अमुक घटना ऐसी हुई और अमुक इंसान देखने में ऐसा था? उसका इतना सिर था? उसका ऐसा रंग था? उसने ऐसा काम किया? उसने ऐसी व्यवस्था बना रखी थी? ये काम उसी का है? ऐसा अनेकों प्रश्न हैं या अनेकों प्रश्न उठते हैं, जिसका शायद आप जवाब नहीं दे पायेंगे।

अब मैं आप लोगों के माध्यम से जिस काल के तारीख महीना साल मालूम हैं उस विषय के बारे में कुछ जानना चाहता हूँ। ये है लगभग ईसा पूर्व 600 से ईसा बाद 800 तक का काल अर्थात लगभग 1400 वर्षो का काल। उस समय के भारत में ज्ञान–विज्ञान काफी उन्नत था, फिर भी आज के हर इतिहासकारों के सामने उस काल की प्रमाणिक और सही जानकारी पर काफी विवाद है।

इस “स्वर्ण काल” में कई शासक हुए जिनका वर्णन ऊपर कर चुका हूँ। स्वर्ण काल के पूर्व का समय मोहनजोदड़ो या हड़प्पा या सिंधु घाटी की सभ्यता और संस्कृति का है, जिसके बारे में अभी तक सही–सही पता ही नहीं चला है कि वह संस्कृति कैसी थी? उसके वंशज कौन थे? उस समय के सम्राट का रंग और रूप कैसा था? सम्राट के माता–पिता का नाम क्या था? उनके बच्चे कौन थे? उस समय कौन सा काम किसके लिए था?

क्या आप लोग या अन्य लेखक महोदय बता सकते हैं कि इस "स्वर्ण काल" के समय के जितने भी शासक हुए हैं वे सभी के सभी देखने में कैसे थे? वे सारे राजा जिन्होंने पहली बार सत्ता हासिल कर अपने नाम या अपने माता–पिता के नाम पर वंश चलाये, उनके पिताजी और माताजी का इतिहास क्या था? उनके पिताजी और माताजी की रंग और सुंदरता कैसी थी? उनके सभी उत्तराधिकारी पुत्रों का रंग और रूप कैसा था? गुप्त वंश के सभी शासकों का फोटो कैसा था? उन सभी राजाओं के समय में काम करने की कौन सी व्यवस्था थी? ऐसे अनेकों महत्वपूर्ण प्रश्न हैं जिनका शायद आप जवाब नहीं दे पायेंगे? क्योंकि मुगल इतिहासकार, अंग्रेज इतिहासकार या भारतीय इतिहासकार आज तक इन प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पाये हैं।

भारत में आज तक जितने भी इतिहासकार हुए हैं, उनके द्वारा प्रस्तुत किताबों में सिर्फ दस प्रतिशत सम्राट की फोटो ही उपलब्ध हो पायी है और बाकी नब्बे प्रतिशत सम्राट की फोटो आज भी उपलब्ध नहीं है। नब्बे प्रतिशत सम्राट सिर्फ नाम से ही जाने जाते हैं। इन सभी प्रश्नों पर लेखक महोदय चक्कर खाने लगते हैं, कि जिनका समय तारीख, महीना, वर्ष सारा कुछ मालूम है, फिर भी इन सभी सम्राटों की पूरी और स्पष्ट जीवनी नहीं मालूम है। इन सभी सम्राटों की आज तक सच्ची फोटो भी नहीं पता चली है। इस विषय पर हर इतिहास के लेखकों में काफी मतभिन्नता देखने को मिलेगी। इससे आप स्वयं ही अंदाजा लगा लीजिये कि जिस घटना की पूरी और पक्की जानकारी होने के बाद भी लेखक महोदय इन सम्राटों की सही–सही जीवनी या सही–सही फोटो आज तक उपलब्ध नहीं करा पाये हैं, तो उस तथाकथित अनादि काल पूर्व की घटनाओं को लेखक महोदयगण पक्के तौर पर कैसे लिख सकते हैं? इन सबका वर्णन समाज या लेखक सिर्फ अपनी आस्था के ऊपर कल्पना द्वारा तो कर सकता है परन्तु उस घटना का सदृश्य और सटीक वर्णन नहीं कर सकता है। फिर भी आज समाज में कितना अंधविश्वास है इसे आप भी समझ सकते हैं?

हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आप लोग स्वयं से या अपने जानने वाले से इन सारे सवालों का उत्तर जरूर पूछेंगे?

दूसरा मत – ऐसे नवयुवकों का है जो ब्राह्मणवादी या सामंतवादी व्यवस्था को देखकर कुंठित है या उस व्यवस्था के द्वारा सताए हुए हैं या उस दबे और सताये हुए समाज से आते हैं। आज इस युवा पीढ़ी ने बाबा साहेब द्वारा प्रदत सुविधा से अपनी स्वयं की मेहनत और बुजुर्गों के आशीर्वाद से उच्च शिक्षा, पद और धन तो प्राप्त कर लिया है, परंतु इसके बावजूद भी यह युवा पीढ़ी इन ब्राह्मणवादियों और सामन्तवादियों के द्वारा अपने पूर्वजों एवं अपने समाज के अपमान तथा अपने स्वयं के प्रति अनादर भाव या हेय दृष्टि के कारण दुःख और गुस्सा से भरा पड़ा है। आज इस ब्राह्मणवादी और सामंतवादी व्यवस्था की बुराईयों को दूर करने हेतु यह युवा पीढ़ी काफी व्याकुल और बेचैन दिखती हैं। परन्तु जब यह शिक्षित युवा पीढ़ी किताबों और ग्रंथों को पढ़कर इस व्यवस्था के विरूद्ध कुछ जानना चाहती हैं, तो इन युवाओं को इन किताबों से असफलता मिलती है, क्योंकि इन किताबों के जितने लेखक और प्रकाशक हुए हैं उनमें 99 प्रतिशत लोग मुगल शासन और अंग्रेजी काल में सत्ता के नजदीकी थे और वो सभी वस्तुतः ब्राह्मणवादी और सामंतवादी लोग ही थे, जिसकी वजह से इन युवाओं को काफी निराशा हाथ लगती है। आज यह युवा पीढ़ी अपनी लगन और मेहनत के बल पर शिक्षा प्राप्त कर हर क्षेत्र में ऊँचे पद–प्रतिष्ठा तो प्राप्त कर ली है, लेकिन उस ब्राह्मणवादी और सामंतवादी विचारधारा वाले लोगों की पुस्तकों से दिग्भ्रमित होते चले जा रहे हैं।

इधर कुछ वर्षों से भारतीय समाज के अंदर इंटरनेट और मोबाइल का प्रचलन काफी बढ़ गया है। आज की युवा पीढ़ी उन ब्राह्मणवादियों और सामन्तवादियों की घुटन व्यवस्था को दूर करने के लिए या विस्तार से जानकारी लेने के लिए अब किताबों का सहारा न लेकर इंटरनेट का सहारा लेते हुए, हर दन्त कथा, श्रुति कथा या स्मृति पुराण की सही जानकारी

गूगल से लेते हैं। अब गुगल के द्वारा जो भी जानकारी मिलती है उससे आज की युवा पीढ़ी या तो पक्की और सही जानकारी मानकर संतुष्ट होती है या कुंठित होकर चुप हो जाती है।

प्रथमतः तो आज की युवा पीढ़ी को यह मालूम करना चाहिए कि ये गुगल है क्या? ये कैसे हमलोगों को जानकारी देता है? आइए जाने गुगल क्या है – आम भाषा में कहें तो गुगल एक प्रकार के पुस्तकालय में काम करने वाला कर्मचारी है, जिस पुस्तकालय में किताब पढ़ने वाले हर युवा भाई–बहन अपनी आवश्यकता अनुसार उपस्थित कर्मचारी से किताब की मांग करते हैं और उसके बाद उस पुस्तकालय में उपस्थित कर्मचारी उस किताब को ढूंढ कर देता है। परंतु उस किताब में जो भी सही या गलत जानकारी दी गयी उसकी सारी जिम्मेदारी उस किताब के लेखक की बनती है। उस किताब में उल्लेखित तथ्यों के संबंध में उस कर्मचारी की कोई भी जिम्मेदारी नहीं बनती है। ऐसा ही होता है न? ठीक उसी प्रकार (पुस्तकालय के कर्मचारी जैसा) गुगल भी इंटरनेट के द्वारा एक खोजी कर्मचारी (सर्च इंजन) का काम करता है, जो डिजिटल किताबों को डिजिटल पुस्तकालय वेबसाइट (World Wide Web) में उपलब्ध किताबों में से आप की मांग के अनुसार आपके कम्प्यूटर या मोबाइल पर नेट के माध्यम से खोज कर लाता है। अब उस डिजिटल किताब में जो भी लिखा हुआ है उसकी सत्यता और प्रमाणिकता की जिम्मेदारी उस लेखक की बनती है जिसने यह डिजिटल किताब लिखी है। अब आपको यह देखना चाहिए कि इन सारी डिजिटल किताबों को वेब पर लिखने वाला कौन है? किस आधार पर यह जानकारी वेब पर प्रदान कर रहा है? इसकी सत्यता कितनी है? क्या कभी सोचा है आप लोगों ने? आईये चर्चा करते हैं।

सर्वप्रथम वेब पर डिजिटल किताब लिखने वाले 90 प्रतिशत ब्राह्मणवादी और सामंतवादी सोंच के लोग हैं जो सिर्फ स्वहीत वाली स्वार्थपरक जानकारी को लिखते हैं। जैसे – छापाखानों के द्वारा कागजों

पर जितनी भी मुद्रित और प्रकाशित किताबों को हम–आप देखते हैं वे सभी के सभी मुगल, अंग्रेज और ब्राह्मणवादी सरकार के संरक्षण काल में भिन्न–भिन्न सामंतवादी लेखकों के द्वारा अपने–अपने नामों से लिखित और प्रकाशित किताबें हैं। इन्हीं सब किताबों को तथ्यपरक और प्रमाणिक मानकर आज के भिन्न–भिन्न अनुवादक या (Web) वेब लेखक इस कहानी को अपने–अपने नामों से वेबसाइट बनाकर वेब (World Wide Web) पर लिखते रहे हैं या लिख रहे हैं। दूसरा एक और वेब लेखक है जिनसा नाम है "विकिपीडिया"। इसका जन्म 2001 में हुआ था। ''विकिपीडिया'' विदेशी है और एक विश्वव्यापी (Global) संस्था है जो पूरी दुनिया के बारे में World Wide Web पर लिखता है। इस संस्था का काम है–हर देश के ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं अन्य सभी विषयों पर स्थानीय लेखकों के द्वारा जो भी लिखा गया है, उन सभी किताबों को आधार मानते हुए अपनी "विकिपीडिया" पर डिजिटल स्वरूप प्रदान करना। अंत में "विकिपीडिया" इन सभी बातों को अपनी जिम्मेदारी से मुक्त होते हुए वहाँ की किताबों और लेखकों को आधार बनाता है, लेकिन आज के समय में कुछ अच्छी और पक्की जानकारी आ जाने से ये "विकिपीडिया" अनुवादक भी बहुत ही चालाकी का उपयोग करते हुए अपनी पुरानी ब्राह्मणवादी और सामंतवादी लेखकों की बातों को लिखते हैं, परन्तु छोटी सी जगह छोड़ देते हैं कि अगर आपको कुछ गलत लगे तो (हिन्दी में) पुनः सम्पादित करे! (English में) Edit करें! क्या आपने इस पर गौर किया है कभी? यानि कि वेब के डिजिटल अनुवादक जो भी लिख रहे हैं वे उसकी प्रमाणिकता की कमजोरी के कारण डरते–डरते लिख रहे हैं और बाद में यह भी लिख दे रहे हैं कि आपको कुछ आपत्ति हो तो पुनः सम्पादित करें। मेरी बात आप लोग समझ रहे हैं न! यह तो ऐसा ही हुआ न, कि किसी लेखक ने अपनी किताब में लिख दिया कि एक बन्दर आकाश में उड़ रहा था, एक कौआ पानी में तैर रहा था, और एक मछली सड़क पर दौड़ रही थी। उसके बाद उस लेखक ने अपनी किताब के अंत में लिख दिया कि अगर आपको मेरे लेख पर किसी भी

प्रकार की आपत्ति हो तो पुनः सम्पादित करें। अब आप ही बतायें इस लेखक में और "विकिपीडिया" में क्या अंतर हुआ। यानि कि जो भी हो, जिस भी विशय को डिजिटल अनुवाद कर "विकिपीडिया" वेब पर लिखा जा रहा है, वह अपनी ज्ञान की कमजोरी को उजागर करते हुए स्वयं ही दिग्भ्रमित है और आज की पूरी युवा पीढ़ी को भी दिग्भ्रमित कर रहा है। आज सिर्फ जरूरत है कि आपको अपनी जानकारी से उसे संपादित करने की और उस दिग्भ्रमित अनुवादक को रास्ता दिखाने की।

निष्कर्ष

पिछले कुछ वर्षों से भारतीय सामाजिक जातीय संरचना के अंदर कुछ संपन्न वर्गों का आचरण और उन सबों के दूसरे सामाजिक गरीब वर्गों पर किये जाने वाले प्रदूषित और हीन सम्बोधन को सुनकर एवं देखकर मेरे मन में कई सवाल उठ खड़े हुए। समाज में चंद लोग सिर्फ अपनी अमीरी की वजह से शैक्षणिक और सामाजिक स्तर पर काफी ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिए, फिर भी गलत राह पर क्यों चल रहे हैं? क्या उन्हें इंसान और इंसान के बीच सही–गलत के अंतर को समझने की क्षमता नहीं है? भारत के समाज में 1000 ईस्वी से पूर्व में आज के इन संपन्न और उच्च शिक्षित वर्गों का 0.001 प्रतिशत भी योगदान नहीं रहा है, फिर भी ये अपनी दन्त कथा और झूठी लेखन कला (ग्रंथों) के माध्यम से समाज के बीच में अपनी उपस्थिति सृष्टि की शुरूआत से या त्रेता युग से बताते हैं, तो इसका समाधान कहाँ और कैसे होगा? तब मैंने विचार किया कि अपने इन विचारों को व्यक्त करते हुए क्यों न एक किताब लिखूँ? मैंने इस आशा से लिखने का निश्चय कर लिया कि इस किताब को पढ़ने के बाद कुछ लोगों को ही सही, यह पुस्तक समाज के अंदर चंद मुट्ठी भर शिक्षित–अशिक्षित, अमीर–गरीब वर्गों के द्वारा लिखित भ्रामक दन्त कथा के ऊपर गलत और सही का रास्ता तो अवश्य दिखाएगी। यदि इस किताब को पढ़कर कुल चार लोग ही उस झूठी दन्त कथा रूपी भ्रम जाल को तोड़कर बाहर निकल पाते हैं, तब आगे

भी वह अपने आस–पास कोई चार–चार और लोगों को उस भ्रामक जाल से बाहर जरूर निकाल पायेंगे, तो इस प्रकार कुल मिलाकर 16 लोग उस भ्रम जाल से मुक्त होंगे, इस प्रकार फिर ये 16 भी उसी प्रकार हर चार–चार लोगों का मार्गदर्शन करेंगे तो कुल 64 लोग भयानक मकड़ा जाल से मुक्त होंगे, इस प्रकार यह संख्या क्रमशः बढ़ती चली जाएगी।

इसके अतिरिक्त मेरे कुछ साथियों ने भी सलाह दी कि इस तार्किक और प्रमाणिक तथ्यों के साथ अपने विचारों को किताब का रूप देकर समाज के बीच प्रकाशित करें, तो वह समाज में कुंठित लोगों के लिए फायदा का काम करेगी और आर्थिक – शैक्षणिक रूप से संपन्न लोगों को भी दन्त कथा से हटकर प्रमाणिक जानकारी मिलेगी व समाज के दलित – पिछड़े लोगों के लिए यह किताब हितकर साबित होगी।

अंत में मैनें इस कार्य को साहस के साथ पूर्ण करने का निश्चय कर लिया और अब यह पुस्तक आपके सामने है। इतिहास के हर सन्दर्भ और आधार को देखते हुए, प्रमाणिक तौर पर भारत के पुराने इतिहास के लेखन और पुराने शासकों की कार्य पद्धति को देखते हुए, उस समय की सांस्कृतिक, धार्मिक एवं सामाजिक समरसता की वस्तुस्थिति से जो कुछ समझा हूँ, उन्हीं विचारों को मैंने इस किताब में व्यक्त किया है। अब फैसला आपके हाथों में है।

उठो–जागो अपनी आवाज समाज हित में बुलंद करो।

“अत्त दीपो भव”



खुदाई से प्राप्त सम्राट अशोक की प्रतिमाँ



स्वराज्य



शिक्षा



समानता



न्याय

विद्या बिन गई मति,
मति बिन गई गति,
गति बिन गई नीति,
गति बिन गया वित्त,
वित्त बिन चरमराये शूद्र,
एक अविद्या ने किये
कितने अनर्थ।

– महात्मा ज्योतीबा फूले